तृतीय अध्याय

'ज्वालामुखी' तथा 'भग्नमन्दिर' में प्रतिबिम्बित गांधीकालीन तथा गांधीवधोत्तर कालीन वातावरण

३.१. प्रस्तावना -

मानव के व्यक्तित्व के विकास मे वातावरण की श्रेष्ठता को इन्कार नहीं किया जा सकता। कहा जाता है कि मानव-मस्तिष्क जन्म के समय तथा शिशु काल में एक साफ प्लेट की तरह होता है, लेकिन बाद में वातावरण के प्रभाव से उसका रूप बदलता जाता है। युगीन सामाजिक, राजनीतिक, धार्मिक एवं आर्थिक वातावरण का मनुष्य पर प्रभाव पड़ता है और उसी के अनुरूप वह अपना जीवन जीता है। साधारण मनुष्य की अपेक्षा साहित्यकार अधिक संवेदनशील होने के कारण वह इस वातावरण की तीव्रता को तुरन्त महसूस करता है और उसी की अभिव्यक्ति अपने साहित्य के माध्यम से करता रहता है। साहित्यकार युग की सृष्टि है और साहित्य उसकी अनुभूति एवं उसके चिन्तन की अभिव्यक्ति है। समाज-सापेक्षता साहित्य का सहज धर्म है। साहित्यकार समाज में घटित होने वाली घटनाओं, आन्दोलनों और परिवर्तनों का तटस्थ दर्शक ही नहीं होता, अपितु होने वाली उथल-पुथल में भागीदार, उस अनुभव का भोक्ता और सामान्य जनों से विशिष्ट होने के नाते आन्दोलनों का अभिवक्ता भी होता है। साहित्य जीवनानुभवों की अभिव्यक्ति है। जब समाज एवं देश का परिवेश साहित्यकार के मर्म को स्पर्श करता है, तब वह उसकी अभिव्यक्ति के लिए छटपटाने लगता है। वास्तव में ऐसा साहित्य ही श्रेष्ठ साहित्य होता है। शेवड़े जी भी ऐसे ही साहित्यकार हैं।

साहित्य-सृजन में युग-चेतना प्रेरणा का कार्य करती है। शेवड़े जी भी युग-चेतना-सम्पन्न साहित्यकार हैं। उनका सृजनकाल भारतीय स्वतंत्रता-संग्राम एवं स्वातंत्र्योत्तर काल रहा है। उन्होंने स्वयं स्वतंत्रता-आन्दोलन में सक्रिय हिस्सा लिया था। इसके लिए उन्हें जेल भी जाना पड़ा। स्वातंत्र्योत्तर कालीन राजनीति से भी वे भली-भाँति परिचित थे। आजादी मिलते ही अंग्रजों की गुलामी खत्म हुई और देशी नेताओं की गुलामी शुरू हुई। एक भारतीय नागरिक तथा पत्रकार के नाते शेवड़े जी ने यह सब देखा तथा सह लिया था। अतः वे राष्ट्रीय आन्दोलनों एवं स्वातंत्र्योत्तर परिस्थितियों से अछूते कैसे रह सकते थे ? अपने इन्हीं अनुभवों के बल पर हिन्दी साहित्य को उन्होंने 'ज्वालामुखी' तथा 'भग्नमन्दिर' नामक दो श्रेष्ठ उपन्यास दिये हैं।

शेवड़े जी गांधीवाद के प्रबल समर्थक थे। स्वतंत्रता-पूर्व काल में वे गांधी जी के सिद्धान्तों

में विश्वास करते थे। स्वातंत्र्योत्तर काल में भारत के नवनिर्माण के लिए उन्हें गांधी-मार्ग ही उचित लगा। 'ज्वालामुखी' सन् १९४२ की अगस्त-क्रान्ति की पृष्ठभूमि पर आधारित उपन्यास है, जिसमें शेवड़े जी ने गांधीकालीन वातावरण को चित्रित किया है। इसी प्रकार 'भग्नमन्दिर' उपन्यास स्वातंत्र्योत्तर कालीन भारतीय विकृत परिवेश पर आधारित है, जिसमें उन्होंने गांधीवधोत्तर कालीन वातावरण का चित्रण किया है।

३.२. 'ज्वालामुखी' में प्रतिबिम्बित गांधीकालीन वातावरण -

'ज्वालामुखी' सन् १९४२ की अगस्त-क्रान्ति की पृष्ठभूमि पर लिखा एक राजनीतिक उपन्यास है। इस उपन्यास में शेवड़े जी ने सन् १९४२ की अगस्त-कान्ति एवं उससे पूर्व अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति में घटित घटनाओं का यथार्थ चित्र प्रस्तुत किया है। व्दितीय विश्वयुद्ध के कारण भारतीय स्वतंत्रता-आन्दोलन को किस प्रकार गति मिली और भारतीय नेता तथा जनता गुलामी की श्रृंखला को तोड़ने के लिए किस प्रकार अपनी जान की बाजी लगा रहे थे आदि बातों को भी इसमें यथार्थ रूप में चित्रित किया है। अभयकुमार को एक गांधीवादी कार्यकर्ता के रूप में, दीनबन्धु को उसके सहायक के रूप में तो अभय की माँ, उसकी पत्नी विजया, शान्ता, दीनबन्धु की पत्नी लक्ष्मी, मजिस्ट्रेट चौधरी की पत्नी आदि को गांधीवादी महिलाओं के रूप में चित्रित किया है।

अभयकुमार उपन्यास का नायक है। वह शोध-छात्र है। पीएच्.डी. के लिए अनुसंधान-कार्य में वह व्यस्त है। उसकी निष्ठा, आदर्श तथा जीवन-दृष्टि से प्रभावित होकर विजया नामक युवती उससे विवाह करती है। उनके विवाह के कुछ दिनों बाद ही सन् १९४२ का 'भारत छोड़ो' आन्दोलन छिड़ जाता है। अभयकुमार गांधी जी का अनन्य भक्त था। उसमें राष्ट्रीयता की तीव्र भावना थी। जब वह बम्बई मे गांधी जी का भाषण सुनता है, तब राष्ट्रभक्ति से प्रेरित होकर वह उस आन्दोलन में कूद पड़ता है। इसी वक्त सरकार ने अभय को गिरफ्तार करने का ऑर्डर निकाला। अभयकुमार जब घुघरी गांव में था, तब लोगों ने गांधी जी के आदेशों को मान कर रक्तमय क्रान्ति की आवाज उठाई। जनता ने इन्स्पेक्टर बाबूराम और मुंशी मुन्नू खां को जिन्दा जला दिया। इसका मूल कारण अभय को माना गया और पुलिस रात-दिन उसकी तलाश में रही। अभयकुमार जंगलों में, खूंखार प्रदेशों में भूखा, नंगे पैरों कभी भिखारी बन कर, तो कभी साधु बन कर घूम रहा था। एक दिन साधु-वेष में ही

वह अपने घर पकड़ा गया।

अभय की गिरफ्तारी के बाद खास न्यायाधीश की नियुक्ति की गई और घुघरी-हत्याकांड का जुर्म लगा कर अभय को फांसी की सजा सुनाई। अभय की फांसी कम करने के लिए लाख प्रयत्न किये गये। नारियों ने, पुरूषों ने ईश्वर की शक्ति का आवाहन किया, पर परिणाम कुछ न हुआ। अभय को फांसी की वेदी पर चढ़ाया गया। जब उसकी शव-यात्रा निकाली जाती है, तब जनता और पुलिस में संघर्ष होता है, गोली चलती है। उसमें घायल हो कर विजया भी शहीद बनती है। दोनों का एक ही चिता पर दाह-संस्कार किया जाता है। अभय की बुढ़िया माँ जीवन से विरक्त होकर काशी चली जाती है और १५ अगस्त १९४७ को भारत को आजाद देख कर सपने की परिपूर्ति की खुशी में दुनिया से विदा लेती है। इसप्रकार उपन्यास की कथावस्तु सुगठित है। आदि से अंत तक कथा को राजनीतिक बनाये रखने में उपन्यासकार सफल हुए हैं। उपन्यास के नायक की महत्ता इसी से स्पष्ट हो जाती है कि वह व्यक्तिगत स्वार्थ-सिद्धि से ऊपर उठकर समाज तथा राष्ट्र की भलाई सोचता है। वह गांधीवादी कार्यकर्ताओं का प्रतिनिधित्व करता है। समूचे उपन्यास में शेवड़े ने सत्य, अहिंसा, सत्याग्रह तथा हृदय-परिवर्तन आदि गांधीवादी तत्त्वों का समर्थन किया है।

'ज्वालामुखी' में प्रतिबिम्बित राजनीतिक, सामाजिक, आर्थिक तथा धार्मिक वातावरण की चर्चा निम्नानुसार की जा सकती है।

३.२.१. राजनीतिक वातावरण -

सन् १९४२ की क्रान्ति का नेतृत्व गांधी जी कर रहे थे। उनके साथ ही उसमें अनेक क्रान्तिकारियों ने भी सक्रिय हिस्सा लिया था। अहिंसा-मार्ग पर श्रद्धा होते हुए भी उपन्यासकार ने सशस्त्र क्रान्तिकारियों के कार्य को नजर अंदाज नहीं किया है। 'ज्वालामुखी' में सन् १९४२ की अगस्त-क्रान्ति का यथार्थ चित्र प्रस्तुत करते हुए वातावरण को घनीभूत बनाने के लिये उपन्यासकार ने हिंसक और अहिंसक - दोनों तत्वों के सक्रिय वातावरण की सृष्टि की है। इस उपन्यास में अभयकुमार तथा दीनबन्धु जैसे गांधीवादी पात्र भी है और उनके साथ ही भोलानाथ पहलवान जैसे क्रान्तिकारी पात्र भी है। उपन्यासकार लिखते हैं -

"दोनों दल अपनी-अपनी शक्ति के अनुसार कार्य कर रहे थे।
गांधीवादी लोग जी-जान से हिंसा को रोकने की कोशिश कर रहे थे,

पर दूसरे दल के लोग, गांधी जी की गैरहाजिरी का फायदा उठा कर हिंसात्मक मार्ग पर बढ़ते चले जा रहे थे। वे कहते थे कि यह क्रान्ति है। सारा देश बलवा कर चुका है। आग भड़क उठी है। ये गांधीवादी लोग किताबी तत्वों को जानते हैं, दुनिया के यथार्थ को नहीं जानते। संयम और शांति से भी कभी क्रान्ति हुई है ?" १

भोलानाथ क्रान्तिकारी है। वह कहता है-

" हमारे पास यह लाल परचा है, जिसमें सारा प्रोग्राम साफ-साफ लिखा है।"२

उस लाल परचे में क्रान्तिकारी पार्टी का कार्यक्रम लिखा था, जिसमें थाना जलाने, पुल उखाड़ने, शस्त्रागार लूटने तथा जालिम अफसरों को सजा देने आदि कामों का उल्लेख था। भोलानाथ पहलवान के दल पर क्रान्तिकारी भगतसिंह का प्रभाव है। इसी कारण वह गाता है-

"माँ, रंग दे बसंती चोला ।
जिस चोले को पहन भगत ने फेंका बम का गोला,
माँ, रंग दे बसंती चोला।" ३

कथानक के प्रारम्भ होते ही उपन्यासकार नाटकीय ढंग से, नीरांजन की ज्योति बुझने से अनिष्ट की कल्पना करते हुए, राजनीतिक धरातल पर आ जाते हैं और अभय तथा विजया के वार्तालाप के माध्यम से द्वितीय विश्वयुद्ध से उत्पन्न अंतर्राष्ट्रीय तथा भारतीय अनिष्टकारी वातावरण पर प्रकाश डालते हैं। अभय कहता है -

"इस अपशकुन में नयी बात कौनसी है । आज तो सारे विश्व में ही अपशकुन की विभीषिका दिखाई देती है। सारा संसार युद्ध की विकराल ज्वालाओं से ग्रस्त है। मनुष्य, मनुष्य का संहार कर रहा है। सिंहासन उलट रहे हैं। नक्शे बदल रहे हैं। मानवता नष्ट हो रही है। ऐसे सर्वव्यापी, भयंकर और महान अपशकुन के सामने और क्या अनिष्ट हो सकता है ? ..... जापान ने सिंगापुर पर हमला कर दिया है। अब तो यह विश्वव्यापी महायुद्ध हमारे देश के दरवाजे पर ही आ गया है। अब तक तो वह यूरोप में सीमित था, लेकिन अब पूरब में भी उसके काले बादल छा गये है और उनकी गहरी छाया

हमारे देश पर भी मंडरा रही है।"४

भारतीय वातावरण पर प्रकाश डालते हुए अभय कहता है-

" हमारे देश का वातावरण इतना पतित हो गया है कि हमारी माँ-बहनों की इज्जत पर गोरे सिपाही हमला करें, तब भी उसे उदारतापूर्वक सहन करने की दीक्षा हमारे देश-वासियों द्वारा दी जाती है। जबान पर तालें पड़े हैं, कलम पर जंजीर जकडी हुई है। हम इज्जत के साथ मर भी नहीं सकतें।" ५

भावी क्रान्ति का संकेत देते हुए अभय आगे कहता है-

"यहां होगा एक प्रचण्ड विद्रोह, जिसकी लपटें इस विशाल साम्राज्य को भी भस्म कर देंगी।"६

द्वितीय विश्वयुद्ध ने भारतीय स्वतंत्रता-आन्दोलन को नई दिशा दी। जापान के जर्मनी की ओर से युद्ध में शामिल होने से भारत में जो प्रतिक्रिया हुई, उसका वर्णन करते हुए उपन्यासकार लिखते हैं -

"सन् १९४१ के दिसम्बर महीने में जब जापान ने सिंगापुर के बन्दरगाह में अंग्रेजों के दो जहाज डुबो दिये, तब भारत में यह वातावरण फैल गया कि विश्वयुद्ध अब हमारा दरवाजा खटखटा रहा है। बंगाल और भारत के पूर्वी किनारे पर भगदड़ मची। कलकत्ता खाली होने लगा। सारे देश में एक विचित्र प्रकार की उथल-पुथल, एक अजीब सरगर्मी फैल गई।" ७

सन् १९४२ की अगस्त-क्रान्ति के पूर्व पूरे देश में राष्ट्रीयता की भावना का संचार हुआ। गांधी जी ने साधारण जनता को भी राजनीति में सक्रिय सहयोग लेने के लिये बाध्य किया। जनता भी गांधी जी के आदेशों को मानते हुए स्वतंत्रता-आन्दोलन में सक्रिय हिस्सा लेने लगी। पूरे देश में गांधी की आंधी फैल चुकी थी। काँग्रेस अब आम लोगों की पार्टी बन गयी थी। ७ अगस्त १९४२ को गोवालिया टैंक मैदान में अखिल भारतीय काँग्रेस कमेटी का अधिवेशन सम्पन्न हुआ था। उस समय आजादी की अनुभूति से अभिमंत्रित आम जनता की आशा-आकांक्षाओं को चित्रित करते हुए उपन्यासकार लिखते हैं -

"लोगों में एक अजीब हलचल थी। वातावरण में गंभीरता थी, पर

विशिष्ट प्रकार का उल्लास भी था। दिलों में आशंका थी, उमंगे थी। ऐसा लगता था कि हिम जैसे शीतल रक्त में भी कुछ गर्मी आ रही है। अब इस देश का सुप्त राष्ट्रपुरूष गहरी नींद से उठता-सा, अँगड़ाई लेता-सा, जाग रहा है। कुछ करना चाहता है, किये बगैर रहेगा नहीं। कल क्या होगा, कोई नहीं कह सकता था। पर कुछ होगा जरूर, यह सभी मानते थे। कोई बात नहीं। कुछ तो हो। यह श्मशान की शांति, यह घोर जड़ता, यह कब्र के पत्थर की-सी शीतलता, यह नपुंसक निश्क्रियता तो नष्ट हो। भले ही यह सर्वनाश की छटपटाहट हो या पतंगे की दीपशिखा में तड़प। पर वह गति है, जीवन है, चैतन्य है। मृत्यु है, तब भी जीवन को अमरत्व में बदल देने वाली महाचैतन्यशाली क्रिया है। कैसा सुन्दर पर्व है। क्या सचमुच हमारी आंखों के सामने इतिहास बनने जा रहा है ?"८

इस प्रकार उपन्यासकार भारतीय राजनीति के स्तर पर आ कर सन् १९४२ की क्रान्ति की पृष्ठभूमि को स्पष्ट करते हुए कॉंग्रेस के अधिवेशन और गांधी जी के भाषण-सूत्र को पकड़ कर नायक के द्वारा सूचित करते हैं-

"यह तो पर्व है, महापर्व । शिव का तांडव-नृत्य होने जा रहा है। ड़मरू की ड़मड़म सुनाई दे रही है। धरा, भूमि सब ड़ोलने की तैयारी में है। यह तो आनन्द, महान आनन्द का क्षण है। आओ, नाचो, इस रौद्र भैरव की नृत्य-लीला के साथ समरस हो जाओ....."९

क्रिप्स-चर्चा भंग हो गई और देश में एक प्रकार की हलचल मची। लोगों ने सोचा कि एकदम दमन शुरू हो जाएगा। पर नेताओं ने कहा, सब्र करो, परिस्थिति देखो और फिर कदम उठाओ। देशभर में सभाएँ होने लगी, यह बताने के लिए कि क्रिप्स-वार्ता क्यों भंग हो गयी।

अभयकुमार पर गांधी जी का जबर्दस्त प्रभाव है। गांधी जी का भाषण सुनने के लिए वह बम्बई चला जाता है। उस दिन गांधी जी ने कहा था-

"मैंने तो तय कर लिया है कि हम या तो करेंगे या मरेंगे। ..... मैं जो सोचता हूँ और करना चहता हूँ, वह सिर्फ हिन्दुस्तान

की दृष्टि से नहीं है, सारी दुनिया की दृष्टि से है। .... मैं सिर्फ हिन्दुस्तान को नहीं उठाना चाहता, तमाम दुनिया को उठाना चाहता हूँ और बताना चाहता हूँ कि तुम्हारा रास्ता गलत है, उसे छोड़ दो ..... मेरी लड़ाई सिर्फ हिन्दुस्तान की भलाई के लिए नहीं है, दुनिया की भलाई के लिए है। पर यदि अंगरेज न मानें, तो फिर अब मेरे पास ठहरने के लिए वक्त नहीं है। दुनिया की इस बढ़ती हुई हिंसा में मैं चुप नहीं रह सकता। मैं या तो करूँगा या मरूँगा। वह मेरा धर्म है - तीसरी बात मेरे लिए नहीं है।" १०

गांधी जी का भाषण सुन कर अभय ने कुसुम जैसा कोमल व्यक्ति जब वज्र जैसा कठोर बनता है, तब उसकी वाणी कितनी प्रखर होती है, इसका अनुभव किया। उसे लगा-

"गांधी व्यक्ति नहीं , एक उत्क्रान्ति है।" ११

आठ अगस्त की रात्रि को सभी प्रमुख नेताओं को अंग्रेजों ने गिरफ्तार कर लिया। प्रतिक्रियास्वरूप जनता ने हिंसा का मार्ग अपनाया। इस स्थिति का वर्णन करते हुए उपन्यासकार लिखते हैं -

"नेताओं की गिरफ्तारी से जनता, जो पहले ही प्रक्षुब्ध थी, उभड़ पडी। गोवालिया टैंक पर झंडा-वन्दन के लिए जो अपार जनसमूह था, उस पर घोड़े दौडाये गयें, अश्रु-गैस छोडी गई। शहर में बाईस-तेईस बार गोली चली। बसें जलीं, ट्राम और रेल की पटरियां उखडीं, बिजली के तार काटे गयें, यानी जनता के मन में जो आया, उसने किया। ..... पुलिस के थानों पर छापे पड़ें, सरकारी खजाने लुटे गयें, सरकारी हथियार जब्त कर लिए गये। अदालतों या सरकारी दफ्तरों में आग लगा दी गई और एक-दो जगह ऐसा भी हुआ कि सरकारी नौकरों की हत्या तक हो गई। रेलगाड़ी को उलटने व पुल तोड़ने के भी प्रयत्न यदा-कदा हुए।"१२

आन्दोलन को कुचलने के लिए सरकार ने भी हिंसा का आश्रय लिया। प्रमुख नेताओं के साथ ही अनेक कार्यकर्ताओं को भी गिरफ्तार कर लिया। भारत की जेलें ठसाठस भर

गईं, इतनी कि राजबन्दियों के लिए नई बैरकें बनानी पड़ी। कोई घर ऐसा नहीं था, जहां से कोई-न-कोई जेल या लड़ाई के मोर्चे पर न गया हो। वियोग और विरह, अपमान और लांछन का वातावरण चारों ओर फैल चुका था। दमन चक्र की विकरालता से आन्दोलन की कमर टूटती-सी दिखाई देने लगी। नेताओं के अभाव में जनता निरूत्साह हो गई। देश में चारों तरफ मुर्दनी छा गई। देश के तेजस्वी लोगों को तो पहले ही जेलों में बन्द कर उनका गला दबोच लिया गया था। बाहर श्मशान की शांति छा गई। कोई भी सार्वजनिक नेता जेल के बाहर नहीं रहा।

सरकार जितनी बेरहमी से आन्दोलन को कुचल रही थी, जनता उतनी ही भड़क उठती थी। अभयकुमार को डर है कि कहीं जनता हिंसा का आश्रय न ले, क्योंकि वह जानता था कि अंग्रेज सरकार हिंसा का दमन करना अच्छी तरह जानती है, पर अहिंसा के सामने उसका हौसला पस्त हो जाता है। इसलिए वह विजया से कहता है -

> "नौ अगस्त को जो विस्फोट हुआ है, उसकी ज्वालाएं दूर-दूर तक फैली हैं - फैल रही हैं। नेताओं के बाहर न रहने से जनता गुमराह न हो जाय, इसका डर है। जनता में जोश बहुत हैं - वह फट पड़ने के निकट है। उसे ठीक रास्ता न मिला, तो गलत रास्ते भड़केगा, पर अब वह शांत नही बैठ सकता। हिंसा में विश्वास रखने वाले क्रान्तिकारी जनता को हिंसा के लिए उभार रहे हैं। हिंसा फूट पड़ें, यह सरकार भी चाहती है, क्योंकि उसका दमन करना वह जानती है। जनता ने एकाध पुलिस-थाने या कचहरी में आग लगाई, तो सरकार गांव के गांव जला डालेगी, एक सरकारी अफसर की कत्ल हुई, तो सारे जमाव पर मशीनगन चला कर लाशें बिछा देगी।"[१३]

और होता भी ऐसा ही है। घुघरी गांव के लोगों ने जब पुलिस-थाने को आग लगाई और दो पुलिस अफसरों को जिन्दा जला दिया, तब वहां बहुत खून-खराबी हुई। घुघरी की पुनरावृत्ती न हो, जनता का जोश खत्म हो जाये, इसलिए अंग्रेजों ने सख्त नीति अपनाई।

सन् १९४२ के इस आन्दोलन की आग अधिकतर शहरों में भड़की, पर उसकी लपटें देहातों में भी जा पहुँची। शहरों की खबरें देहातों में पहुँची, तब वहां भी विस्फोट हुए।

'ज्वालामुखी' में उपन्यासकार ने घुघरी नामक एक गांव का चित्रण किया है, जो भारत के ग्रामों का प्रतिनिधित्व करता नजर आता है। उपन्यासकार लिखते हैं -

> "घुघरी गांव में जोश उमड़ रहा था। वैसे भी वहां जागृति थी और अब तो क्रान्ति का वातावरण था। इसलिए क्या पूछना ! "करो या मरो" के नारे से सारा गांव गूंज उठा था। गांव की आबादी दो-ढाई हजार होगी। पुलिस थाना था, डाकघर, प्राइमरी स्कूल आदि सुविधाएं थी, पर राष्ट्रीय जागृति में वह बड़ी-बड़ी तहसीलों और कुछ जिलों से भी आगे था। प्रदेश के नेताओं को इस गांव का भरोसा था। पटेल, पटवारी जैसे पांच-सात घरों को छोड़ कर सारे गांव में एक भी घर ऐसा नहीं मिलेगा, जहां राष्ट्रीय झण्डा न हो या गांधी जी की तस्वीर न हो।"१४

घुघरी की जनता के विशाल जुलूस तथा उसकी प्रखर देशभक्ति की ओर संकेत करते हुए उपन्यासकार लिखते हैं -

> " इतनी भीड़, इतनी रेल-पेल, इतना धक्कम-धक्का । भगवान जाने, कौनसी वह ताकत थी, जो इस विशाल जन-समुदाय को तूफान की तरह झकझोर रही थी। कल तक ये देहाती नागरिक कितने शांत थे, कितने सौम्य थे, जैसे गऊ। ..... पर आज इन्हीं मिट्टी के पुतलों में यह जान कहां से आ गयी। उनमें से दो-चार को छोड़ कर किसी ने गांधी बाबा को देखा भी नहीं था। पर आज लगता था मानो वे उनकी नस-नस में समा गये हैं। कल का शांत सागर आज इतना भयंकर और अशांत क्योंकर हो उठा ? कल का सौम्य मानव आज शंकर जी का रूद्रावतार कैसे धारण कर पाया ? कल का सुप्त ज्वालामुखी आज कैसे धधक उठा ? "१५

अपनी-अपनी ओर से सभी स्वतंत्रता-आन्दोलन में सहयोग दे रहे थे। सुभाषचंद्र बोस देश के बाहर रह कर अपनी मुक्ति-फौज के सहारे आन्दोलन चला रहे हैं। इसलिए दीनबन्धु चाहता है कि उनकी मुक्ति-फौज के साथ-ही-साथ देश में कुछ धड़ाका करें ।१६

सचमुच, यह आन्दोलन नहीं, एक क्रान्ति थी। आन्दोलन का संचालन नेता करते हैं, क्रान्ति जनता के द्वारा चलाई जाती है। ऐसा लगता था, भारत में जो श्मशान की शांति थी,

उसे भंग करने के लिए तूफान उठा है। पृथ्वी के गर्भ में छिपे ज्वालामुखी की तरह आज वह फट पड़ा है। इसकी अग्नि-वर्षा में कौन भस्म होगा और कौन बचेगा यह कौन कह सकता है ? पता नहीं, यह तूफान कब शांत होगा । पता नहीं, तब तक कितने घर उजड़ चुकेंगे ! कितने लोगों को अपने प्राणों की आहुति देनी होगी ! शंकर ने आज रूद्रावतार धारण कर लिया है। भगवान ने सृष्टि और स्थिति के कार्य से अवकाश लेकर संहार की लीला प्रारम्भ कर दी है। तूफान को कभी रोका जा सकता है ? इसी प्रकार घर-घर में उठे क्रान्ति के इस तूफान को रोकना भी असंभव था।

सन् १९४२ की इस क्रान्ति मे जनता ने स्वयं-प्रेरणा से हिस्सा लिया था। उनमें ऐसे लोग थे, जिनका रोजमर्रा की राजनीति से कोई सम्बन्ध नहीं था। वे विद्यार्थी थे, अध्यापक थे, छोटे-मोटे व्यवसायों में काम करने वाले दीनबन्धु की तरह रोजगारी थे, साधारण कार्यकर्ता थे, जो स्वंयसेवकों की श्रेणी के निकट और नेताओं की श्रेणी से दूर थे। ऐसे लोगों में अधिकांश महिलाएं थी। पर नकली देशभक्तों की भी कमी नहीं थी। ऐसे छद्म गांधीवादी चरित्रों का रहस्योद्घाटन करते हुए उपन्यासकार लिखते हैं -

> " गेहूं के साथ घुन भी पिस जाता है, उसी के अनुसार देशभक्तों के साथ नकली माल भी जेल में आ गया था। ..... सही सलामत रह कर बाहर निकले, तो सफेद खद्दर इन्हीं के बदन पर रहता। इस्त्री की हुई सफेद टोपी इस टेढ़े लहजे से लगातें, मानो सारी क्रान्ति इन्हीं के बल पर चली हो। चाहे-अनचाहे जेल जाने का जो 'पराक्रम' उनके हाथ से हो गया था।" १७

'ज्वालामुखी' में उपन्यासकार ने अंग्रेज नौकरशाही के द्वारा आन्दोलन के कुचल जाने का भी सजीव चित्रण किया है। मजिस्ट्रेट चौधरी, सब इन्स्पेक्टर गुलाबराव, सर्किल इन्स्पेक्टर बाबूराम तथा मुंशी मुन्नू खां आदि अंग्रेज-नौकरों का चित्रण इसी हेतु किया है। उपन्यासकार लिखते हैं-

> " नौकरशाही ने अपने हथियार पैने करने शुरू किये। खुपिया पुलिस का जाल फैल गया। पुलिस, फौजें और जेल की भरती होने लगी। सरकारी नौकरों के नाम गुप्त हिदायतें जारी होने लगी कि इस

बार किसी ने कुछ कमजोरी दिखाई, तो उसे पंचम-स्तंभी करार देकर सख्त कार्रवाई की जायेगी। यदि मुस्तैदी दिखाई, तो तरक्की दी जायेगी। नतीजा यह हुआ कि कमजोरी कम लोगों ने दिखाई और मुस्तैदी बहुतेरों ने ।"१८

कभी-कभार सरकारी नौकरों को बड़े अफसरों की डाँट-फटकार भी खानी पड़ती थी। सरकार यह हर्गिज उम्मीद नहीं करती थी कि उनके वफादार नौकरों के घर में ही बगावत के कारखानें हो। लिहाजा सरकार मजिस्ट्रेट से पूरी-पूरी वफादारी का इकरार चाहती थी। वफादारों के लिए तरक्कियों और खिताबों के दरवाजें खुले पड़े थे। जिन्होंने कमजोरी दिखाई, उन्हें बरखास्त कर नमक हरामी के लिए गिरफ्तार करने का भी सरकार को हक था। बगावत करने वालों के साथ कोई रियायत नहीं की जाती। गद्दारों के सामने ऐसी भयंकर मिसाल पेश की जाती, ताकि फिर दुबारा सरकार की मुखाफलत करने की किसी में हिम्मत न हो।

९ अगस्त के विस्फोट के बाद अंग्रेजों ने पूरे देश में आतंक फैला दिया। आन्दोलन को कुचलने के लिए उन्होंने हिंसा का उपयोग किया। परिणामस्वरूप सम्पूर्ण देश हिंसा का क्रीड़ा-स्थल बन गया। अभयकुमार मन-ही-मन सोचता है -

"सारे विश्व में हिंसा का दावानल दहक रहा है। न्याय, सत्य, मानवता की सरे आम कत्ल हो रही है। मनुष्य की मानवता और ईश्वर का ईश्वरत्व कुछ देर के लिए सो गया है और विधाता ने शायद शुद्ध पाशविकता को पूरी छुट्टी दे दी है कि लो, तुम भी अपना खेल जी खोल कर खेल लो। जितना नीचे उतर सकते हो, उतर जाओ, मन में कोई हविस बाकी न रहे कि हमने आत्म-संहार के लिए कोई भी बात उठा रक्खी है।" १९

अंग्रेजों के तीव्र दमन के कारण यह आन्दोलन असफल हुआ। इसके असफल होने का दूसरा कारण था - भारतीय नौकरों की वफादारी। विजया भी कहती है कि अगर भारतीय अफसरों का असहयोग होता, तो अंग्रेज हमारे देश पर शासन करने में असमर्थ हो गये होते -

" प्रत्येक भारतवासी के हृदय में यह कहां चुभता है, अभय ? चुभता तो लड़ाई के सामान जुटाने में हमारे देश के इतने सरकारी अफसर तथा राजनीतिक दल कैसे टूट पड़ते ? यदि इन सब भारतीयों का असहयोग होता, तो मुट्ठी भर अंगरेज इतने बड़े देश का राज्य कैसे चला पाते, लड़ाई लड़ना तो दूर रहा ?" **२०**

अभय इसे स्वीकार करते हुए कहता है -

"तुम ठीक कहती हो, विजया। यह हमारे देश की सब से बड़ी कमजोरी है, सब से बड़ा लांछन है कि हमारे नागरिक ही अपनी गुलामी की जंजीरें मजबूत करने में मदद कर रहे हैं। यही कारण है, जो गांधी जी का त्याग और तेजस्वी नेतृत्व भी आज वह सफलता नहीं ला रहा है, जो कि उसे लानी चाहिए।" **२१**

स्वतंत्रता-पूर्व काल में पूरे भारत की राजनीतिक चेतना गांधी जी में समाई थी। गांधी जी के सत्य, अहिंसा, सत्याग्रह तथा हृदय-परिवर्तन आदि तत्त्वों के प्रति जनता की पूरी सहानुभूति थी। 'ज्वालामुखी' में उपन्यासकार ने अभयकुमार तथा दीनबन्धु के माध्यम से गांधीवादी राजनीतिक चेतना का विश्लेषण किया है। इस विश्लेषण में उन्होंने अहिंसात्मक आन्दोलन, सत्याग्रह का प्रयोग, हृदय-परिवर्तन में आस्था आदि गांधी-तत्त्वों पर प्रकाश डाला है तथा ढोंगी नेताओं की खिल्ली उड़ाई है। अभयकुमार घुघरी की जनता को सत्य, अहिंसा के मार्ग का अनुसरण करने के लिए बताता है तथा अन्याय के विरूद्ध अहिंसात्मक आन्दोलन चलाने की सलाह देता है। गांधी जी के हृदय-परिवर्तन के तत्त्व में उसकी पूरी आस्था है। तभी तो वह मानता है कि अन्यायी का हृदय-परिवर्तन करना ही अहिंसक क्रान्ति का उद्देश्य है। राजनीतिक अस्त्र के रूप में वह सत्याग्रह का प्रयोग करता हुआ दिखाई देता है। समय आने पर वह आत्मबलि देता है और सत्य के पथ पर अड़िग रहता है। स्थान-स्थान पर उपन्यासकार उन छद्म गांधीवादी चरित्रों का रहस्योद्घाटन करते दिखाई देते हैं, जो गांधीवाद के प्रति सच्ची निष्ठा नहीं रखते, लेकिन यश, कीर्ति तथा निजी स्वार्थ की पूर्ति के लिए अपने को गांधीवादी घोषित करते हैं। उपन्यासकार ने ऐसे नकली देशभक्तों की पोल खोल दी है।

इसप्रकार 'ज्वालामुखी' में सन् १९४२ की क्रान्ति का यथार्थ चित्र प्रस्तुत करते हुए उपन्यासकार ने गांधीवादी राजनीतिक चेतना का विश्लेषण किया है। यह एक आदर्शवादी उपन्यास है, फिर भी 'आदर्श ' के कारण 'यथार्थ' को बाधा नहीं पहुँची है। इस संदर्भ में डॉ. गुंजीकर लिखते है -

> "इसमें आदर्श की प्राप्ति के लिए यथार्थ का कलात्मक चित्रण अत्यंत सुन्दर हुआ है। इस उपन्यास में ऐतिहासिक बातों का अत्यंत सुन्दर रीति से संरक्षण हुआ है, जिससे उपन्यास काल्पनिक होते हुए भी सत्य लगता है। इतिहास और साहित्य, आदर्श और यथार्थ का मेल बहुत ही कलात्मक रीति से जोड़ा गया है।" २२

इस उपन्यास के पीछे लेखक की अनुभूति रही है। डॉ. गुंजीकर आगे लिखते हैं -

> "नायक के साथ लेखक यदि कहीं एकाकार हुआ है, तो इसी उपन्यास में। ऐसा लगता है, शेवड़े जी अपनी कहानी सुना रहे हैं। जीवन की सच्ची अनुभूति के बिना आदर्शवाद प्रवंचना में और यथार्थवाद विकृतिवाद में बदल जाता है, किन्तु अनुभूति की सच्चाई, उन्माद के प्रत्येक रूप को मार्मिक बना देती है। आदर्शवाद पर आधारित क्रान्ति के उन्माद का यह चित्रण 'ज्वालामुखी' शब्द को सार्थक करता है। "२३

भारत के प्रथम राष्ट्रपति डॉ. राजेंद्र प्रसाद ने इस उपन्यास की ' सन् १९४२ की अगस्त-क्रान्ति का यथार्थ एवं सजीव चित्रण' कह कर सराहना की थी। २४

उपन्यास की यथार्थता के बारे में प्रकाशक महोदय ने लिखा है -

> "इस उपन्यास की रचना केवल कल्पना के आधार पर नहीं की गई है। इसके पीछे लेखक की अनुभूतियां हैं। .... सन् १९४२ की क्रान्ति में उन्होंने सक्रिय भाग लिया था, जिसके कारण उन्हे तीन वर्ष जेल में रहना पड़ा। यही कारण है, जो इस उपन्यास की विषय-वस्तु इतनी सजीव, शक्तिशाली एवं मर्मस्पर्शी बन पड़ी है। ..... इसे पढ़ कर सन् १९४२ की क्रान्ति का ऐसा प्राणवान चित्र सामने

उभर आता है, जो भारतीय स्वाधीनता-संग्राम के प्रबल प्रयास का ज्ञान कराता है।" २५

'ज्वालामुखी' का मूल प्रेरणा-स्त्रोत है - नागपुर के शहीद शंकर और सिन्ध के कच्ची उम्र के विद्यार्थी हेमू कलानी, जिन्हें फाँसी की सजा लगी थी। 'ज्वालामुखी' की निर्मिति के पीछे विनोबा जी की प्रेरणा भी काम कर रही थी। शेवड़े जी लिखते हैं -

" सिवनी जेल के तंग अहाते में विनोबा जी से लगातार और लम्बी चर्चाओं के दौरान ही इस उपन्यास की कल्पना साकार हुई। इसकी रचना करते समय जहां जेल-जीवन की अनेक मीठी-कड़ुवी स्मृतियां दिमाग में आती-जाती रही, वहां एक स्मृति बड़ी स्पष्ट रही - वह भी विनोबा की स्नेह-सिक्त ममता-भरी मूर्ति - आशीर्वाद की तरह शुभ और आरती की तरह मंगल।" २६

इससे स्पष्ट है कि इस उपन्यास की पृष्ठभूमि में क्रान्तिकारक तथा पवित्र आदर्श छिपे हुए हैं। कुल मिला कर हम कह सकते हैं कि 'ज्वालामुखी' में तत्कालीन राजनीतिक वातावरण का अत्यंत सजीव चित्रण हुआ है।

३.२.२. सामाजिक वातावरण -

'ज्वालामुखी' तथा 'भग्नमन्दिर' शेवड़े जी के श्रेष्ठ सामाजिक उपन्यास हैं। २७ 'ज्वालामुखी' में स्वतंत्रता-पूर्व भारतीय वातावरण का चित्रण मिलता है, तो 'भग्नमन्दिर' में स्वातंत्र्योत्तर वातावरण का। दोनों भी उपन्यास युग-चेतना से ओत-प्रोत हैं।

मनुष्य का अध्ययन राष्ट्र की स्थिति और उसके पर्यावरण से किया जाता है। २८ इस दृष्टि से स्वतंत्रता-पूर्व भारतीय समाज की ओर देखा जाय, तो वहां हमें एक ओर स्वार्थ तो दूसरी ओर निस्वार्थ दिखाई देगा। 'ज्वालामुखी' का अभयकुमार निस्वार्थ हेतु से बलिदान के लिए प्रस्तुत होता है। वह विवाह के प्रथम दिन सुहागरात में देश की चिन्ता से व्यथित होकर मृत्यु की कल्पना करता रहता है और वैयक्तिक प्रेम को देशप्रेम के सामने तुच्छ मानता है। उसी प्रकार स्वाधीनता के लिए नौकरी करने वाले दीनबन्धु तथा लक्ष्मी दम्पति का त्याग भी निस्वार्थ हेतु से किया गया त्याग है। दूसरी ओर लालच में धन की पूजा करने वाले जज गुप्ता, थानेदार गुलाबराव, इन्स्पेक्टर बाबूराम तथा दो हजार की लालच में अभयकुमार को

अंग्रेजों के हाथ सौंपने की इच्छा रखने वाले दारोगा में स्वार्थी वृत्ति दिखाई देती है। तत्कालीन भारतीय मनुष्य की इस मनःस्थिति का यथार्थ परन्तु करूणास्पद चित्र उपन्यासकार ने खींचा है। इसे पढ़ कर सच्चे भारतीय का दिल बेचैन हो जाता है। इस प्रकार का अनुभव खुद अभयकुमार को भी विचलित करता है।-

> "इन पचास दिनों में जैसे पचास वर्षों का अनुभव ठूँसकर भरा था। यह अनुभव जड़ से हिला देने वाला था। स्वार्थ और त्याग, दया और क्रूरता, नैतिक उत्थान और पतन - ये सब उसे साकार होकर दर्शन दे चुके थे। विष और अमृत को उगलने वाले इस महान समुद्र मंथन को देख कर वह पूरी तरह हिल उठा था।" **२९**

'ज्वालामुखी' उपन्यास का कालखंड सन् १९४१ से १९४७ तक का है। यह काल गांधी जी द्वारा चलाये गये 'भारत छोड़ो' आन्दोलन का काल है। इसी समय सशस्त्र क्रान्तिकारी भी अपने मार्ग से स्वाधीनता-प्राप्ति का प्रयास कर रहे थे। भारतीय समाज में इन दोनों मार्गों के प्रति आस्था दिखाई देती है। उपन्यासकार ने दोनों दलों के समाज पर पड़े प्रभाव का सजीव चित्रण किया है।

महात्मा गांधी जी ने साधारण मनुष्य को भी राजनीति में सक्रिय सहभाग लेने के लिये मजबूर कर दिया था। 'ज्वालामुखी' के दीनबन्धु तथा उसकी पत्नी लक्ष्मी साधारण परिवार के ही पात्र हैं। स्वातंत्रता-आन्दोलन मे स्त्रियों का भी महत्त्वपूर्ण सहयोग था। भारतीय स्त्रियों के हृदय में गांधी जी के प्रति अकृत्रिम आस्था थी। अभय की माँ, विजया, दीनबन्धु की पत्नी लक्ष्मी, शान्ता, मजिस्ट्रेट चौधरी की पत्नी, सब इन्स्पेक्टर गुलाबराव की पत्नी जानकीबाई आदि महिलायें गांधीवादी हैं, जिन्हें गांधी जी के मार्ग पर पूरा भरोसा है। इस प्रकार सन् १९४२ की क्रान्ति में नारी-समाज का सहयोग और आस्था प्रशंसात्मक है।

जब अभयकुमार को फाँसी की सजा सुनाई जाती है, तब मजिस्ट्रेट चौधरी की पत्नी ने घर में शतचण्डी का पाठ बैठाया, दीनबन्धु तथा उसकी पत्नी ने व्रत-उपवास रखें, घर-घर में रूद्राभिषेक शुरू हुआ, जप-पाठ शुरू किये गये, ईश्वर की शक्ति का आवाहन किया गया कि वह इस निर्मल, कोमल अंतःकरण के युवक के प्राणों की रक्षा करें। स्त्रियों ने वटवृक्ष की पूजा की, मानताएँ बोली और सावित्री की तरह विजया के सौभाग्य को अखण्ड

बनाये रखने के लिए वरदान माँगे। ३० एक देशभक्त, साहसी एवं धैर्यशील नवयुवक के प्राणों के लिये समाज की इतनी आस्था, इतना तादात्म्य, इतनी चिन्ता - सचमुच अदभुत थी। विजया तथा अभय की माँ के दुःख में भारतीय समाज के असंख्य नर-नारी सहभागी थी। इससे भारतीय समाज की राष्ट्रीयता का पता चलता है। शेवड़े जी ने 'ज्वालामुखी' में तत्कालीन समाज की यथार्थता का बड़ा मार्मिक तथा रोमहर्षक उद्घाटन किया है। -

> "बाबा मानवदास की गिरफ्तारी से जनता क्षुब्ध हो गई। बोली, "कल फागू किसान को गोली मार दी और आज बाबा जी को कैद कर लिया । इस राज में अब कोई नेम-धरम भी बचा है या नहीं ? हम हाथ-पर-हाथ धरे बैठे रहें, धिक्कार है हमारे जीने पर ! चलो रे संगी । अब हम कुछ करके ही दिखायेंगे। करेंगे या मरेंगे।"३१

बयालीस की क्रान्ति में साधारण लोगों का यह सक्रिय सहयोग सचमुच प्रशंसात्मक है।

तत्कालीन भारतीय समाज में ऐसे भी कई संत थे, जो अपने भजनों एवं कीर्तनों के द्वारा भारतीयों के हृदय में राष्ट्रीयता की भावना का संचार कर रहे थे। बाबा मानवदास ऐसे ही साधु हैं। भगवद्भक्ति के साथ ही वे मानव-सेवा का भी संदेश दिया करते थे। स्वामी विवेकानन्द की तरह उनका उपदेश भी यहीं था कि निराकार परमेश्वर तो साकार मानव के हृदय में बसते हैं। इसलिए मानव की सेवा ही ईश्वर को पाने का एकमात्र मार्ग है। ३२ समाज में मानवतावाद की प्रतिष्ठा में इन साधुओं ने महत्त्वपूर्ण सहयोग दिया है। महादेव की पहाड़ी पर रहने वाले स्वामी जी समाज से दूर रह कर भी समाज में अध्यात्म की प्रतिष्ठा करना चाहते हैं। -

> "तुम लोग देश के राजनीतिक उद्धार के लिए प्रयत्नशील हो, हम लोग उसकी आध्यात्मिक उन्नति के लिए प्रयत्नशील हैं। ..... हमारी धारणा हैं कि जब तक इस विशाल और सुसंस्कृत देश में आध्यात्मिक मूल्यों की प्रस्थापना नहीं होती, तब तक यहां सुख-शांति नहीं हो सकती और तभी तक दुनिया में भी अमन-चैन नहीं हो सकता।"३३

भारतीय समाज में 'गीता' का प्रभाव अत्यधिक मात्रा में पाया जाता है। अभयकुमार

की माँ, अभय तथा विजया - सभी की 'गीता' में अनन्य भक्ति है। गांधी जी के चरखे को भी समाज ने अपनाया था। दीनबन्धु जैसे साधारण परिवार में चरखे का होना यही देखाता है। अभय की माँ अपने जीवन के अंतिम दिनों में चरखा चलाती है। अतः यह स्पष्ट है कि 'ज्वालामुखी' में युगीन सामाजिक वातावरण का भी चित्रण मिलता है।

३.२.३. आर्थिक वातावरण -

स्वाधीनता-पूर्व भारत की आर्थिक स्थिति बहुत शोचनीय थी। ब्रिटिश-पूर्व भारत में, लगभग समूचे देश में एक-सी ग्राम-व्यवस्था मिलती थी। यह ग्राम-संसार आत्मनिर्भर था और इसलिए बाह्य संसार से एकदम कटा हुआ था। कलात्मक वस्तुओं का उत्पादन जनता के लिए न होकर नगरों में रहने वाले सामन्तों तथा राजा-महाराजाओं और धनी व्यक्तियों के लिए ही होता था। उन्हीं के संरक्षण में भारतीय उद्योग-धंदे जीवित रहते थे। भारतीय कलात्मक वस्तुएं विदेशों में भी निर्यात की जाती थी। यूरोप भारतीय व्यापार का बाजार था और वहां का बहुत-सा सोना-चाँदी भारत आता था।

परन्तु अंग्रेजों ने अपनी आर्थिक नीति बदल दी। इस वक्त देशी राजा-महाराजाओं के ऱ्हास का प्रारम्भ हुआ। परिणामस्वरूप अंग्रेजों की पूँजी भारत में आ कर उद्योगों में लग गयी और भारत के चाय, काफी, रबड़ तथा नील के उद्योग-धंदे उनके हाथ आ गये। कच्चा माल भारत से जा कर पक्का माल भारत में आने लगा। इससे हमारी पूँजी विदेश जाने लगी और हमारे लघु एवं कुटीर उद्योगों का ऱ्हास प्रारम्भ हुआ। हाथ से बने माल की अपेक्षा विदेशी माल सस्ता होने के कारण आर्थिक स्थिति में हम गिरते गये और अंग्रेजों ने उसका

पूरा लाभ उठा कर भारत में कपास आदि के कारखानें शुरू किये। परिणामस्वरूप हमारे अच्छे-अच्छे कलाकारों ने अपने उद्योग छोड़ दिये और मिल-मजदूर बन गये। कुछ कारीगर कृषि की ओर ध्यान देने लगे। परन्तु अंग्रेजों ने अपनी धन की भूख को अधिक तीव्र किया। व्यापार की सुलभता के लिए उन्होंने यातायात के साधनों में वृद्धि की। रेल, सड़कें तथा मोटरों के साधनों में विकास किया, जिससे भारत में लोह, सीमेंट, कागज तथा खनिजों के उद्योग स्थापित किये। लघु-यंत्रों पर आधारित नवीन उद्योगों का भी विस्तार हुआ। इन कारखानों के कारण हमारे कृषि तथा कुटीर उद्योगों पर परिणाम होकर हमारे कलाकार बेकार रह गये। कच्चा माल नष्ट होने से लघु-उद्योगों पर परिणाम होना स्वाभाविक ही था।

इसी काल में भारत में बड़े-बड़े अकाल हुये, जिससे अनेक लोगों की आर्थिक स्थिति बिगड़ गयी। इसी वक्त हमारे व्यापारी लोगों ने दो महायुद्धों का फायदा उठाया। महायुद्धों मे सामान की कमी के कारण कारखानों के उत्पादन में घाटा हुआ, जिससे बेकारी की समस्या उत्पन्न हो गई। युद्ध-जनित परिस्थिति का व्यापारी लोगों ने लाभ उठाया और काला बाजार शुरू किया, जिससे भारतीयों के सामने बेकारी तथा भ्रष्टाचार की मुसीबतें खड़ी हुई। भारतीयों में अनास्था तथा विफलता की निराशा छा गयी। इसी काल में गांधी जी ने विदेशी कपड़ों का बहिष्कार कर खादी का प्रचार किया। उन्होंने मशीनों के खिलाफ आवाज उठायी और लघु-उद्योगों को अपनाना चाहा।

स्वाधीनता-पूर्व भारत की इस दयनीय आर्थिक दशा का चित्रण शेवड़े जी ने अपने अनेक उपन्यासों में किया है। 'ज्वालामुखी' में भी स्थान-स्थान पर यह चित्रण दिखाई देता है। शेवड़े जी महात्मा गांधी जी के आर्थिक विचारों से प्रभावित थे। इस कारण वे हमेशा गृह-उद्योगों को प्रोत्साहन देते हैं और औद्योगीकरण के विरोध में आवाज उठाते हैं, आर्थिक बल पर किसान तथा मजदूरों का शोषण कदापि कबूल नहीं करते हैं। भारतीय स्वाधीनता-संग्राम के समय की परिस्थिति अत्यंत विकृत थी। अंग्रेजों ने अपने मोहजाल से भारतीय समाज को सम्मोहित किया था। हर एक व्यक्ति अपने स्वार्थ से परिचालित था। देशप्रेम की झलक किसी में भी नहीं देखी जाती थी। इस काल की स्थिति का वर्णन करते हुए शेवड़े जी लिखते हैं -

> " व्यापारियों को धन-लिप्सा ग्रसे हुए है। सरकारी कर्मचारियों को युद्ध-कार्य में अपना सब कुछ खपाकर खिताब और वाहवाही लूटने की हविस है। कीमतें बढ़ रही हैं, आवश्यक चीजों का अभाव है, गरीब जनता दाने-दाने को मुहताज है, पैसों की इफरात है और सभी चाँदी की रेलगाड़ी पर चढ़ने के लिए बेतहाशा भागे जा रहे हैं। रूपया-पैसा बनाने में अनाज में मिट्टी मिला कर भी देना पड़े, तो कोई बात नहीं। आंधी के आमों को लूटने का मौका फिर नहीं आने का। इसलिए बना लो, जितना देर बने, आज ही जमा कर लो। पैसा कमाने के लिए परमिट, खुशामद, रिश्वतखोरी और युद्ध का चंदा जरूरी था, सो यह सब सरे-आम होने लगा।"[३४]

भारतीय जनता अन्दर से हमारे व्यापारियों से तथा बाहर से अंग्रेजों से लुटी जा रही थी।

९ अगस्त १९४२ के आस-पास की परिस्थिति का, भारतीय आर्थिक शोषण का, चित्र उपस्थित करते हुए उपन्यासकार लिखते हैं -

> " (इस काल में) सब से जादा नैतिक पतन तो व्यवसायी और रोजगार धंदे वालों में हुआ। वे निन्यानवै के फेर में इस तरह पड़े कि गांधी, देश आदि की याद उन्हें अड़चन पैदा करने लगी। फौज की भरती धड़ाधड़ होती जा रही थी। मुद्रा के अत्यधिक चलन के कारण कीमतें बढ़ गईं। गरीब और मध्यवर्ग को दो वक्त का भोजन जुटाने में लेने-के-देने पड़ने लगे। अतः सब-के-सब लड़ाई की नौकरियों की तरफ बेतहाशा भागने लगे। लड़ाई के कारण यूरोप और एबिसीनिया में तो खून की नदियां बह रही थीं, पर भारत में चाँदी लुट रही थी। उस सफेद रंग की चमचमाती धातु ने काली आत्मा वाले निर्धन, निर्बल और प्रतिकारहीन भारतीय नागरिकों के मन को मोह लिया।" ३५

स्वाधीनता-पूर्व भारत के कुटीर उद्योगो में चरखे का महत्त्वपूर्ण स्थान था। गांधी जी ने उसका प्रचार और प्रसार किया था। शेवड़े जी गांधी जी के आर्थिक विचारों से प्रभावित थे। अतः उन्होंने भी चरखे का स्वीकार किया है। दीनबन्धु जैसे साधारण मनुष्य के परिवार में चरखे का होना तथा अभय की माता का अपने अंतिम दिनों में चरखा चलाना शेवड़े जी की इसी दृष्टि पर प्रकाश डालता है। इस प्रकार शेवड़े जी ने 'ज्वालामुखी' में स्वाधीनता-पूर्व भारत की दयनीय आर्थिक स्थिति का सजीव चित्रण किया है।

३.२.४. धार्मिक वातावरण -

एक शताब्दी पूर्व राजा का धर्म राज्य का धर्म था। समाज धार्मिक रीति-रिवाजों से परिचालित था। कानूनों का आधार धर्मशास्त्र था। आध्यात्मिक साधना और मोक्ष-प्राप्ति ही जीवन का परम लक्ष्य था। लेकिन धीरे-धीरे इस स्थिति में परिवर्तन आया। आध्यात्मिक दृष्टिकोण की अपेक्षा भौतिकवादी दृष्टिकोण को प्रधानता मिली। परलोक के स्थान पर लौकिक सृष्टि की स्थापना हुई। मुक्ति का उद्देश्य परलोक सुख के लिए नहीं, वरन् लौकिक हो गया।

राजनीतिक दासता से मुक्त होना सब से बड़ा मोक्ष माना जाने लगा। इसी कारण ही इस काल के सभी धार्मिक आन्दोलन सामाजिक सुधार, जनता का उद्धार तथा राजनीतिक विषयों की चर्चा करते हैं। इस काल की धार्मिक विचारधाराओं में ईश्वर नाम मात्र है, केंद्र में है मानव और उसकी पारिवारिक एवं सामाजिक-राजनीतिक समस्याएँ। ईश्वर का स्थान मानव ने , परलोक का स्थान लौकिक जगत ने तथा मोक्ष का स्थान मनुष्य की सुख-समृद्धि करने वाले तत्त्वों ने ले लिया। राजा राममोहन राय, स्वामी दयानन्द सरस्वती, रामकृष्ण परमहंस, स्वामी विवेकानन्द तथा महात्मा गांधी के प्रभाव से प्राचीन संस्कृति के प्रकाश में भारत का आत्मविश्वास जाग उठा और व्यापक रूप में मानवतावाद की प्रतिष्ठा हुई।

गांधी जी की ईश्वर में असीम श्रद्धा थी। उन्होंने भारत में कर्मवाद की प्रतिष्ठा की। साधु-सन्तों की संगति में उन्हें बडा आनन्द आता था। गांधीजी राजनीति, विज्ञान आदि क्षेत्रों में भी अध्यात्म की प्रतिष्ठा करना चाहते थे। शेवड़े जी गांधी जी के इन्हीं धार्मिक विचारों से प्रभावित थे। आधुनिक काल के उपन्यासकार होते हुए भी उन पर मध्यकालीन सांस्कृतिक तथा धार्मिक विचारों का प्रभाव पड़ा है। वे प्रकृति से धार्मिक है और विचारों से सुधारवादी। धार्मिक ढकोसले तथा पाखंड से उनकी कोई सहानुभूति नहीं है।

शेवड़े जी का यह धार्मिक दृष्टिकोण उनके 'ज्वालामुखी' उपन्यास में पूर्ण रूप से लक्षित होता है। नकली साधु-संन्यासी, धूर्त पाण्डे-पुजारी तथा धर्म के नाम पर व्यभिचार फैलाने वाले ढोंगी राजनीतिक नेता उनके आक्रोश के पात्र बने हैं। जहां वे सुधारवादी हैं, वहां वे पूर्ण पुरातनवादी भी हैं। 'ज्वालामुखी' का नायक अभयकुमार तथा विजया 'देवगृह' में जा कर नीरांजन तथा कर्पूर लगाते हैं। धर्म भीरू विजया नीरांजन के बुझने से शंकित होती है, पर अभय इस घटना का स्वागत करता है। अभय की माँ सोमवार, एकादशी तथा शिवरात्रि के उपवास करती है। वह हमेशा देवगृह में पूजा-पाठ करती दिखाई देती है। अन्त में, अभयकुमार तथा विजया के मृत्युपरांत, वह पूजा-पाठ की सामग्री लेकर दश्वाश्वमेध घाट पर चली जाती है। ३६

भारत की आध्यात्मिक तथा सांस्कृतिक विचारधारा को लेकर चलने वाले पात्रों में बाबा मानवदास तथा स्वामी जी प्रमुख हैं। एक मानवतावादी साधु बाबा मानवदास के चरित्र पर प्रकाश डालते हुए उपन्यासकार लिखते हैं -

"बाबा मानवदास उसी इलाके के एक साधु थे, जो भगवद्भक्ति के साथ ही मानव-सेवा का भी संदेश दिया करते थे। स्वामी विवेकानन्द की परम्परा की तरह उनका उपदेश भी यही था कि निराकार परमेश्वर तो साकार मानव के हृदय में बसते हैं। इसलिए मानव की सेवा ही ईश्वर को पाने का एकमात्र मार्ग है। ... भक्ति के साथ कर्म का समन्वय होना चाहिए, ऐसा वे मानते थे। इसलिए उनके भक्तों को केवल त्रिपुण्ड लगा कर ध्यान धरते हुए किसी ने नहीं देखा। उनके हाथ में झाड़ू, दवा का बक्स और स्लेट-पेंसिल आदि उपकरण भी दीखते, जिनके फलस्वरूप गांव की सफाई, मरीजों और पीड़ितों की सेवा तथा साक्षारता-प्रसार आदि कार्यों में भी काफी तरक्की होती थी।"[२७]

महादेव की पहाड़ी पर रहने वाले स्वामी जी भारत में राजनीति के साथ-साथ अध्यात्म की भी प्रतिष्ठा करना चाहते हैं। अपनी यह धारणा प्रकट करते हुए वे कहते हैं -

"तुम लोग देश के राजनीतिक उद्धार के लिए प्रयत्नशील हो, हम लोग उसकी आध्यात्मिक उन्नति के लिए प्रयत्नशील हैं। ..... जब तक इस विशाल और सुसंस्कृत देश में आध्यात्मिक मूल्यों की प्रस्थापना नहीं होती, तब तक यहां सुख-शांति नहीं हो सकती और तभी तक दुनिया में अमन-चैन नहीं हो सकता।" [२८]

और वह घोषणा भी करते हैं कि भारत की मूल प्रकृति अध्यात्म की है। उसके विपरीत जा कर जो कोई इस देश का निर्माण करने का प्रयत्न करेगा, वह असफल होगा। गंगा उलटी नहीं बह सकती और न हिमालय हिमहीन ही हो सकता है।

भारतीय धार्मिक दृष्टिकोण में आत्मा को बहुत महत्त्व दिया गया है।

" आत्मा एक है; वह शाश्वत है, चिरन्तन है, अमर है।" [२९]

'ज्वालामुखी' के अधिकतर पात्र आस्तिक हैं। अभयकुमार, उसकी माँ, विजया, मजिस्ट्रेट चौधरी की पत्नी, दीनबन्धु तथा उसकी पत्नी लक्ष्मी आदि सभी आस्तिक हैं। इस प्रकार

'ज्वालामुखी' में तत्कालीन धार्मिक एवं सांस्कृतिक वातावरण का सजीव चित्रण हुआ है।

निष्कर्ष रूप में हम कह सकते हैं कि 'ज्वालामुखी' एक राजनीतिक उपन्यास होने के कारण उपन्यासकार ने इसमें राजनीतिक वातावरण को प्रमुखता दी है। साथ ही उसमें स्थान-स्थान पर तत्कालीन सामाजिक, आर्थिक एवं धार्मिक वातावरण की भी झलक मिलती है।

३.३. 'भग्नमन्दिर' में प्रतिबिम्बित गांधीवधोत्तर कालीन वातावरण -

'भग्नमन्दिर' शेवड़े जी का दूसरा राजनीतिक उपन्यास है। इसमें उपन्यासकार ने गांधीवधोत्तर कालीन विकृत परिवेश का सजीव चित्रण किया है। इस काल में त्याग, देशभक्ति, नैतिकता, सच्चाई जैसे जीवन-मूल्यों का ऱ्हास हुआ। हमारे राजनीतिज्ञ मस्त होकर अपने उल्लू सीधे करने में मग्न रहे। शेवड़े जी राजनीति में भले ही नहीं थे, पर राजनीतिज्ञों के करीब जरूर थे। अपने सारे निरीक्षणों को संजो कर उन्होंने 'भग्नमन्दिर' को स्वातंत्र्योत्तर कालीन भारतीय राजनीति का आलेख बना दिया है। इसमें आँखो देखे हाल में होने वाली बारीकी जैसे है, वैसे व्यंग्य में होने वाली मार्मिकता भी। 'भग्नमन्दिर' अपने समय-सन्दर्भों को लेकर चलने वाला उपन्यास होने के कारण उसे 'समकालीन जीवन की कॉमेंट्री' कहना उचित होगा। इस उपन्यास में एक कर्तव्यनिष्ठ पत्रकार और उसको आधार बना कर आधुनिक राजनीति में पत्रकारिता के महत्त्व और कर्तव्य पर विचार व्यक्त किये हैं। पत्रकारिता के गांधीवादी आदर्श को अपनाया है। चूँकि शेवड़े जी खुद एक सफल पत्रकार थे, इस उपन्यास को उनकी आपबीती भी माना जाता है।

'भग्नमन्दिर' उपन्यास का नायक धनंजय एक राष्ट्रीय नीति का पत्रकार है। स्वतंत्रता-प्राप्ति के पूर्व वह अपने 'युगान्तर' पत्र के माध्यम से अंग्रेजी शासन से लोहा ले रहा था। सन् १९४२ में, अगस्त क्रान्ति के सिलसिले में जब वह सादे तीन साल के लिए जेल चला गया था, तब उसकी पत्नी गीता ने 'युगान्तर' का प्रकाशन बड़ी हिम्मत से जारी रखा था। इतना ही नहीं, प्रेस को आग लगने पर जनता तथा कर्मचारियों की मदद से उसने प्रेस का पुनर्निर्माण कर दिखाया था। धनंजय की तरह वह भी राष्ट्रीय वृत्ति की महिला थी। महात्मा गांधी जी के विचार उसमें ठूँस-ठूँस कर भरे हैं। स्वतंत्रता-प्राप्ति के पश्चात् वे उन्हीं विचारों से चिपके रहते हैं, जबकि कॉंग्रेसी-कार्यकर्ताओं के विचारों में तेजी से परिवर्तन

आता है। मानो केवल स्वतंत्रता-प्राप्ति तक ही उन्हें गांधी जी की जरूरत थी, स्वतंत्रता-प्राप्ति के पश्चात् गांधी जी 'आउट ऑफ डेट' हो गये। पन्द्रह अगस्त को भारत स्वतंत्र होते ही उसका पहला मंत्रिमंडल बना और उसके साथ ही प्रदेश के मंत्रिमंडल भी बने। सत्ता हाथ आते ही काँग्रेसी-कार्यकर्ता और नेता गांधी जी के सत्य, अहिंसा, सादगी, मितव्ययिता आदि तत्त्वों को भूल गये और फिजूल खर्ची और भड़कीलेपन की ओर आकर्षित हुए। इससे धनंजय व्यथित होता है।

पण्डित पूरणचन्द्र जोशी राज्य के बुजुर्ग राजनीतिज्ञ हैं। सत्ता की होड़ में वे अपना प्रतिद्वंद्वी नहीं जानते हैं। यही कारण है कि वे मुख्यमंत्री के रूप में एक विशाल प्रदेश की बागड़ोर सँभालते हैं। वे देश के एक पुराने तपे हुए कार्यकर्ता थे। सन् १९२० में वे गांधी जी के असहयोग आन्दोलन में कूद पड़े थे। सन् १९३७ में बनाये गये काँग्रेस-मंत्रिमंडल में उन्हीं को नेता चुन लिया गया था। वे धनजंय के जेल के साथी थे। स्वतंत्रता-प्राप्ति के पूर्व वे गांधीवादी विचारों के समर्थक थे, परंतु जैसे ही सत्ता उनके हाथ आती है, उनकी नीति में परिवर्तन होता है। जोशी जी धनंजय तथा गीता को मंत्रिमंडल में सम्मिलित होने के लिए आग्रह करते हैं, पर वे इन्कार कर देते हैं। पत्रकारिता में भी वे रूचि रखते थे। अपने प्रदेश में आदर्शों की स्थापना करने के नाम पर वे अपने पुराने दैनिक पत्र को नये 'युगान्तर' का रूप देते हैं। साथ ही उसे विशाल प्रदेश का मुखपत्र बना देते हैं और धनंजय को उसका सम्पादक। उनकी आदर्शों की बातों में धनंजय उलझ जाता है और उनका साथ देने के लिए तैयार हो जाता है, इस शर्त पर कि पत्र की नीति का निर्धारण वह स्वयं करेगा।

लेकिन धीरे-धीरे प्रदेश में चारों ओर भ्रष्टाचार और अनाचार फैल जाता है। मंत्रिमंडल के मंत्री अपना उल्लू सीधा करने में मग्न रहते हैं। पुलिस तथा अन्य सरकारी अधिकारी जनता के हित की अपेक्षा अपना हित देखने लगते हैं। जनता पहले भी बेजबान थी और अब भी उसमें कोई परिवर्तन नहीं आया। धनंजय जब यह सब देखता है, तब बहुत ही अस्वस्थ बन जाता है। मूल तत्व में भिन्नता आने से धनंजय और मुख्यमंत्री जोशी में संघर्ष निर्मित होता है। आगे चल कर यह संघर्ष इतना तीव्र बनता है कि जोशी जी अपने अधिकारों का दुरूपयोग करते हुए गिरधारी, रणदमन सिंह, रमजान खां तथा पुलिसों के द्वारा धनंजय को नष्ट करने का प्रयत्न करने लगते हैं।

जोशी जी और धनंजय के बीच का यह संघर्ष गांधी-नीति और अगांधी-नीति, अहिंसा और हिंसा, सत्य और असत्य तथा धर्म और अधर्म का संघर्ष था। परन्तु अंत में न्याय ने अन्याय, अहिंसा ने हिंसा, निस्वार्थता ने स्वार्थ, धर्म ने अधर्म, जनता ने शासन, रक्षक ने भक्षक, सत्य ने असत्य तथा कुल मिला कर गांधी-नीति ने अगांधी-नीति पर विजय पाई। जोशी जी तथा पुलिसों द्वारा धनंजय पर लगाये गये सारे इल्जाम झूठे साबित होते हैं और धनंजय को बाइज्जत बरी कर दिया जाता है। भोलानाथ, गीता, जनता और बाबा जी की कृपा धनंजय को सहकार्य देते रहे। अंत में जब यह मामला पंतप्रधान के पास जाता है, तब वे जोशी जी को मुख्यमंत्री पद से हटाते हैं। इस प्रकार व्यक्तिगत संघर्ष अंत में राष्ट्रीय पृष्ठभूमि पर खत्म होता है। उपन्यास को अंत तक राजनीतिक बनाये रखने में उपन्यासकार सफल हुए हैं।

'भग्नमन्दिर' में प्रतिबिम्बित राजनीतिक, सामाजिक, आर्थिक तथा धार्मिक वातावरण की चर्चा निम्नानुसार की जा सकती है।

३.३.१. राजनीतिक वातावरण -

'भग्नमन्दिर' एक राजनीतिक उपन्यास है। इसकी शुरूआत १५ अगस्त १९४७ के दिन भारत की स्वाधीनता की घोषणा के साथ होती है। स्पष्ट है कि यहां उपन्यासकार का प्रमुख उद्देश्य स्वातंत्र्योत्तर भारतीय राजनीति में आये परिवर्तन का चित्रण करना है। स्वतंत्रता-प्राप्ति के अनंतर कुछ ही महीनों में गांधी जी की हत्या कर दी गयी। गांधीवधोत्तर काल में देश में गांधी जी एवं उनके सिद्धान्तों के प्रति अनास्था फैल गयी, गांधीवाद धीरे-धीरे लुप्त होने लगा। गांधी जी केवल मौखिक श्रद्धा की वस्तु बन गये तथा उनका तत्वज्ञान केवल भाषण में ही आने लगा। देशी नेताओं की कथनी और करनी में पर्याप्त अंतर दिखाई देने लगा। केवल अपनी स्वार्थ-सिद्धि के लिए गांधी जी का उपयोग करने वाले अनेक छद्म गांधीवादी नेताओं का निर्माण हुआ। अपने को गांधीवादी घोषित करते हुए इन नेताओं ने यश, कीर्ति तथा पद-प्रतिष्ठा प्राप्त कर ली। इस प्रकार कवच के रूप में गांधीवाद का इस्तेमाल किया जाने लगा। परिणामस्वरूप पूरे देश में भ्रष्टाचार और अनाचार फैल गया। नेता केवल अपना हित देखने लगे और जनता की उपेक्षा करने लगे। चुनाव के क्षेत्र मे भी भ्रष्ट आचरण किया जाने लगा।

आजादी के बाद देश की बागडोर संभालने वाली काँग्रेसी हुकूमत में वही लोग शामिल थे, जिन्होंने आजादी की लड़ाई में गांधी जी के प्रति अपनी सम्पूर्ण आस्था प्रदर्शित की थी और उनके निधन के बाद उनके सपनों को साकार करने का संकल्प किया था। ये नेता आजादी के पूर्व गांधीवादी राजनीतिक चेतना से प्रभावित थे, लेकिन जैसे ही सत्ता उनके हाथ आई, धीरे-धीरे वे गांधीवादी चिन्तन से दूर होते चले गये। जनता के प्रति अपने उत्तरदायित्व का निर्वाह ईमानदारी से करने के बजाय वे केवल अपनी कुर्सी बचाने के प्रयास करने लगे तथा जनता की आशा-आकांक्षाओं की उपेक्षा करने लगे। इन नेताओं के पास त्याग, सेवा और ईमानदारी का नितान्त अभाव होता गया। उन्होंने गांधीवाद को उसके आदर्शों से पदच्युत कर दिया। अतएव गांधीवाद में होने वाली आम जनता की आस्था स्वाभाविक रूप से कम होने लगी। खासकर सत्तालोभी काँग्रेसी भ्रष्ट नेताओं ने गांधीवाद का केवल ढिंढोरा पीटा। काँग्रेस को गांधीवाद का पर्याय समझने वाली जनता को जब सत्ताधीशों के वास्तविक चरित्र का पता चलता है, तब उसके मन में काँग्रेसी शासन के प्रति अविश्वास का जन्म होता है।

गांधीवधोत्तर कालीन इस समस्त वातावरण की अभिव्यक्ति 'भग्नमन्दिर' में हुई है। मुख्यमंत्री पण्डित पूरणचन्द्र जोशी तथा लोककर्म विभाग के मंत्री मनमोहन बाबू भ्रष्ट मंत्रिमंडल के प्रतिनिधि मंत्री है, जो पूरी तरह भ्रष्टाचार में लिप्त हैं। जोशी जी देश के एक पुराने तपे हुए कार्यकर्ता हैं। स्वतंत्रता-प्राप्ति के पूर्व उन पर गांधी जी के व्यक्तित्व का जबर्दस्त प्रभाव था, लेकिन जिन्दगी के लम्बे सफर में काफी दूरी तय करने के बाद वे समयगत सच्चाईयों को नहीं ठुकरा सके। व्यक्तिगत स्वार्थ तथा भौतिक सुख की लालसा के प्रलोभन में वे अपने आदर्शों से नीचे गिर जाते हैं। दूसरी ओर मनमोहन बाबू जैसे मंत्री गांधीवाद के प्रति सच्ची निष्ठा नहीं रखते हैं, लेकिन यश, कीर्ति, सत्ता, पद-प्रतिष्ठा और निजी स्वार्थ की पूर्ति के लिए अपने को गांधीवादी घोषत करते हैं। वे गांधीवाद का इस्तेमाल अपने लिए कवच के रूप में करते हैं और अवसर मिलते ही सामाजिक सुविधा को व्यक्तिगत स्वार्थ के लिए अपनी जेब में रख लेते हैं। उनका आचरण 'मुँह में राम और बगल में छुरी' कहावत को सार्थ करता है। मुख्यमंत्री की वैभव-प्रियता और अन्य मंत्रियों की कमजोरियों का चित्रण करते हुए उपन्यासकार ने ऐसे छद्म गांधीवादी चरित्रों का रहस्योद्घाटन किया है।

पण्डित पूरणचन्द्र जोशी एक विशाल प्रदेश के मुख्यमंत्री हैं। उनका रहन-सहन तथा

वैभव किसी राजा-महाराजा से कम नहीं है। उनके महल की सजावट, फर्श के कालीन और गालीचे, फर्नीचर, दीवार पर की तस्वीरें, दरवाजें और खिड़कियों के पर्दे, चाँदी और सुवर्ण के पालिश से युक्त गिलास, थालियां, कटोरियां तथा अन्य उपकरण देख कर धनंजय को लगता है कि वह किसी मुगल सम्राट के दरबार में बैठा हुआ है। जोशी जी का महल तथा ऐशोआराम देख कर उसे मध्ययुगीन सामंतशाही की याद आती है। उपन्यासकार लिखते हैं -

> "जोशी जी के अहाते में तीन सरकारी मोटरें खड़ी रहती, तो पाँच निजी मोटरें भी रहती, जो उनके परिवार के लोगों ने अपनी-अपनी कमाई और पुरूषार्थ से खरीदी थीं। जब ये मोटरें राजधानी के राजमार्गों से गुजरती, तो लोग कह उठते, राजपरिवार के लोग जा रहे हैं, स्वराज्य इन्हीं के भाग्य को जगाने के लिए आया है।" ४०

प्रदेश में चारों ओर भ्रष्टाचार फैल चुका है। जोशी जी के साथ-साथ मंत्रिमंडल के अन्य मंत्री जितना हो सके, कमा रहे हैं। टाइपराइटर की एजन्सी, शिक्षा तथा अन्य संस्थाओं के अध्यक्ष-पद जोशी जी के आदमी को ही मिलते थे। इसकी ओर संकेत करते हुए उपन्यासकार ने लिखा है -

> " एक नया तंत्र निर्माण किया गया था, जिसका प्रजातंत्र से कोई सम्बन्ध नहीं था, अपने 'अहं' से सम्बन्ध था। 'लिव अँड लेट लिव' - जियो और जीने दो। हम तुम्हारे काम में दखल नहीं देते, तुम हमारे काम में दखल मत दो। यह तुम्हारा क्षेत्र है, यह हमारा - मानो हर एक के इलाके बँट गये थे। ..... सभी काम जनता के कल्याण की भावना का उद्घोष करके ही किये जाते, पर यह सब विशुद्ध सेवा और कल्याण की भावना एवं दृष्टि से नहीं किये जाते। स्कूल-कॉलेज खुलते, तो अपने आदमियों द्वारा चलाई गयी संस्थाओं के ग्राण्टों के लिए हाथापाई होती, प्रोफेसर-प्रिंसिपल की नियुक्तियों में हस्तक्षेप होता, परिक्षाओं के पर्चे और रिझल्ट खुल जाते, शिक्षा-विभाग के उच्चाधिकारी या मंत्री के लड़के को जबर्दस्ती मार्क

बढ़ा कर पहला नम्बर दे दिया जाता। शिक्षा के क्षेत्र में जब न्याय और नीति की ऐसी हत्या होने लगती, तो दूसरे विभागों का क्या पूछना ? .... कोई भी काम शुद्ध और निर्मल वृत्ति से होता नहीं। कोई भी स्कीम कागज पर कितनी भी पवित्र और कल्याणकारी क्यों न लगे, प्रत्यक्ष अमल में उसके तीन-तेरह हो जाते। उसके उद्‌गम के पीछे शायद कल्पना शुद्ध रहती, पर उसके प्रवाह में न जाने स्वार्थ, लोभ और मोह की कितनी उपनदियां आ कर मिल जाती कि वह आगे चल कर दूषित हो जाता, विषैला बन जाता। "४१

मंत्रिमंडल में एकाध मंत्री ऐसा भी था, जो अपना काम चोख बजाता, उसकी राह में कोई नहीं जाता था। दुर्भाग्य से ऐसे मंत्रियों की कमी थी।

जोशी जी के प्रशासन में व्याप्त भ्रष्टाचार के बारे में भोलानाथ कहता है -

"जोशी जी के राज्य में भ्रष्टाचार खूब फैल रहा है। नौकरशाही में अपने-पराये का भेद चल रहा है। ग्रूपबाजी और दलबन्दी चल रही है। उनके रिश्तेदारों के यहां तो मोतियों की वर्षा हो रही है। ठेकें, खदानें, एजन्सियां - कोई ऐसा धन्दा नहीं, जिसमें उनके रिश्तेदारों का साझा न हो।" ४२

जब जोशी जी और धनंजय में संघर्ष निर्माण होता है, तब 'युगान्तर' पर दोषारोपण करके लोग अपना काम करवा लेते थे। थोड़ी-सी खुशामद से जोशी जी बहुत प्रभावित हो जाते और लोगों का काम तुरन्त करवा देते थे - किसी की नौकरी तो किसी का तबादला-तरक्की।

केवल मंत्री ही नहीं, यहां की पुलिस भी भ्रष्टाचार में पूरी तरह लिप्त हैं। उपन्यासकार लिखते हैं -

"अधिक से अधिक मुकदमों को दायर करना और उसमें सजा दिला देना यह पुलिस विभाग की दक्षता का लक्षण माना जाता था। सच्चे केस न मिलें, तो झूठे केस बनाने की वृत्ति इसी में पैदा होती थी। झूठे केस बनाने में तो अक्सर पुलिस के कर्मचारियों की नीयत ही अधिक काम करती। थाने और अदालतों के धक्के खाने के बजाय

पुलिस को सौ-पचास देकर जान छुड़ा लेना अधिक श्रेयस्कर होता। हर तरह के मुकदमों में जैसे वकीलों की फीस ठहरी हुई होती है, उसी तरह पुलिस के कर्मचारियों की भी रहती है और उसमें नीचे से ऊपर तक हिस्से लगे रहते हैं। जुओं के अड्डे चलते हैं, वेश्यालय चलते हैं, गैरकानूनी शराब बनाने के कारखानें चलते हैं, ब्लैक मार्केट वाले व्यापारियों के कारोबार चलते हैं, गुण्डागर्दी के डर से डरपोक धनिकों से रूपये ऐंठे जाते हैं ..... यह सब कारोबार एक विशिष्ट योजना और व्यवस्था के अनुसार यंत्रवत् चलता रहता है। पुलिस मजिस्ट्रेट, जेल के अधिकारी सब इन लोगों को जाने-समझते हैं। यह एक बिल्कुल निराली अजीब दुनिया है। " ४३

पुलिसों के द्वारा सामान्य बेकसूर लोगों को अनेक यंत्रणायें दी जाती है। यह सब देख कर जनता के सामने प्रश्नचिन्ह लगा रहता कि ' यह प्रजातंत्र है या पुलिस तंत्र ?'

मंत्रिमंडल के मंत्री अपने मन की करते रहते हैं। उन्हें रोकने वाला कोई नहीं है। इसी कारण मनमोहन बाबू जैसे मंत्री मंत्रिमंडल के शराब-बन्दी के खिलाफ आचरण करते हैं, डाक बंगले में शराब पीकर हसरत अदा जान का गाना सुनते हैं और बेचारे एस.डी.ओ. शर्मा का अपमान करते हैं, जो बिल्कुल बेकसूर है। मंत्रियों से अपना काम करवा लेने के लिए ठेकेदार बड़ी-बड़ी पार्टियों का आयोजन करते हैं। ठेकेदार हातिमभाई भी उन्हीं में से एक है -

"उनका पैंतीस लाख का टेण्डर अटका पड़ा था और खुश किस्मती से उनके महकमे का मिनिस्टर एक तीस साल का नौजवान था, जिसके जिस्म पर तो मोटे खद्दर के कपड़े थे पर भीतर ही भीतर एक फड़कने वाला कमजोर दिल था। " ४४

वे मनमोहन बाबू को पार्टी में बुलाते हैं और अपना काम करवा लेते हैं।

किसी मंत्री से एकाध गलती हो गयी, तो जोशी जी उसे डाँटते जरूर थे, पर बाद में उसे बचाने का हर तरह से प्रयास करते। इस प्रकार परोक्ष रूप से स्वयं जोशी जी भ्रष्टाचार को प्रोत्साहन देते हुए दिखाई देते हैं। उनके प्रशासन में जनता की नहीं, तो मंत्री

और अधिकारी लोगों की खुशी को महत्त्व दिया जाता है। भ्रष्टाचार निर्मूलन की समितियाँ बनाई जाती हैं, लेकिन उसका अध्यक्ष-पद रायसाहब रणदमन सिंह को ही मिल जाता है, जो सिर से पैर तक भ्रष्टाचार में लिप्त है। धनंजय सोचता है कि ऐसे व्यक्ति को भ्रष्टाचार निर्मूलन के काम में लगाना जनता का मखौल उड़ाना है, उसके जख्म पर नमक छिड़कना है। उपन्यासकार लिखते हैं -

"स्पष्ट है कि शासन भ्रष्टाचार का निर्मूलन करने में नहीं, उसका संरक्षण करने में दिलचस्पी रखता है।" ४५

स्वातंत्र्योत्तर काल में, देश में अनेक छद्म गांधीवादी लोगों का निर्माण हुआ। ये लोग गांधीवाद के प्रति सच्ची निष्ठा नहीं रखते हैं, लेकिन निजी स्वार्थ के लिए अपने को गांधीवादी घोषित करते हैं। स्वाधीनता-प्राप्ति के पूर्व जो अंग्रेज सरकार के नौकर थे या जो अंग्रेजो के प्रति सहानुभूति रखते थे, भारत स्वतंत्र होते ही उनमें तेजी से परिवर्तन आया। ऐसे ही एक चीफ सेक्रेटरी के बारे में उपन्यासकार लिखते हैं -

" चीफ सेक्रेटरी, जो अब तक सिर्फ अंग्रेजी लिबास में ही रहा करते थे, आज खद्दर की काली शेरवानी, चूड़ीदार पैजामा और सफेद गांधी टोपी लगाए समारोह का संचालन कर रहे हैं। "४६

सर्किल साहब का भी वही हाल है -

" पुलिस के सब से बड़े सर्किल साहब तो आज शक्कर की लकड़ी जैसे मीठे और मधुर बन कर दौड़धूप कर रहे थे। जिस जनता पर उन्होंने क्रूर दमन-नीति बरती थी, उसी की कृपा पाने के लिए आज वे विशेष रूप से कोशिश कर रहे थे। "४७

लोककर्म विभाग के डिप्टी सेक्रेटरी रघुनाथ सहाय तथा उनकी पत्नी श्रीमती तारामतीदेवी अंग्रेजी रंग में पूरी तरह रंग गये थे। तारामतीदेवी के सम्बन्ध में उपन्यासकार लिखते हैं -

"उनका जन्म केवल हिंदुस्तान में हुआ था, पर लिबास, रहन-सहन, तहजीब से क्या मजाल कि वे अंग्रेजों को न लजा दे। होली, दिवाली की बजाय क्रिसमस डे का उनके सामने अधिक महत्त्व था। .... गांधी उनके लिए एक पागल था, जो अपने खब्त के

लिए लोगों को गुमराह करता था। उसका लिबास भी इतना असभ्य और अशोभनीय रहता कि सभ्य समाज की स्त्रियों को उसके सामने जाने में भी संकोच होता।" ४८

ऐसा सोचने वाली सहाय-दम्पति ने तुरन्त बदली हुई परिस्थिति से रूख मिलाया। उसका वर्णन करते हुए उपन्यासकार लिखते है -

"स्वातंत्र्य समारंभ के दो दिन पहले ही उन्होंने अपने शिष्टाचार का तंत्र बदला और कपड़े भी बदल डाले। ..... सूट और पतलून की जगह सफेद चूड़ीदार पैजामा और काली अचकन आ गई और सिर पर सफेद टोपी। श्रीमती सहाय ने भी एक मामूली किन्तु शुभ्र साड़ी पहनी थी। लिपस्टिक भी गायब थी और उसकी जगह सादी वेश-भूषा और स्वाभाविक वर्ण ने ले ली थी।" ४९

उन्होंने अपने बंगले का भी नक्शा बदल दिया। -

"ड्राइंग रूम में सोफासेट पर खद्दर चढ़ गया। दीवार पर किंग जॉन और क्वीन मेरी के चित्रों की जगह महात्मा गांधी, जवाहरलाल नेहरू, सरदार पटेल आदि के चित्र आ गए। रेड़ियो के ऊपर भगवान बुद्ध की प्रस्तर-प्रतिमा आ गई। किताबों की दराज में गांधी जी तथा नेहरू जी की आत्मकथाएं, लुई फिशर की किताबें तथा दो-एक स्वामी रामकृष्ण, विवेकानन्द के ग्रन्थ आ गए।" ५०

ये भी ऐसे ही छद्म गांधीवादी चरित्र हैं, जो बदली हुई परिस्थिति से रूख मिलाते हैं और गांधी जी का उपयोग अपनी स्वार्थ-सिद्धि के लिए करते हैं।

स्वातंत्र्योत्तर काल में पूरे भारत में अगांधीत्व फैल गया। गांधी जी ने असीम साधना और तपस्या कर गांव-गांव में अनेक वीर-पुत्रों और वीर नेताओं का निर्माण किया था। परन्तु स्वाधीनता-प्राप्ति तथा गांधी जी के निधन के बाद ये वीर पुत्र और वीर नेता सत्ता-कामिनी की विलास-क्रीड़ा में उलझ गए। परिणामस्वरूप पदों, अधिकारों और सुविधाओं का लोभ और एक बार उन्हें पाने के बाद उनके छूटने का भय - ये दो प्रधान प्रवृत्तियां देश में उभर कर सामने आयी। सत्य, सेवा, न्याय, अहिंसा और प्रेम के तत्त्व कमजोर पड़ गए। गांधी जी

केवल मौखिक श्रद्धा और आदर की वस्तु बन गए। आचार और विचार में अगांधीत्व सिर से पैर तक भर गया।

जब स्वयं गांधी जी की उपयोगिता ही कम हो गई, तब स्वाभाविकतः उनके स्थापित किये हुए मूल्यों का भी महत्त्व कम हो गया। संयम और आत्मनियंत्रण ढीला हो गया, त्याग और सेवा की वृत्ति क्षीण हो गई, नीतिमत्ता और चरित्र के मूल्यों का अवमान होने लगा। सादगी और मितव्ययिता की जगह भड़कीलापन, दिखावा और फिजूल-खर्ची आ गई।

महात्मा गांधी तथा पटेल के पश्चात् नेहरू जी राष्ट्रीय दल के सर्वेसर्वा बन गए थे। वे आधुनिक विज्ञान की सभ्यता में पले हुए थे। इस कारण उनका दृष्टिकोण पश्चिमी राष्ट्रों के दृष्टिकोण के समान है, जिसमें भारतीयता केवल नाम मात्र है। शेवड़े जी लिखते हैं -

> "वे बड़े सहृदय हैं, परिश्रमी हैं, भारत-निष्ठ हैं, पर भारतीय संस्कृति के प्रतिनिधि नहीं हैं। गांधी जी ने उन्हें अपना वारिस तो बनाया, पर उनमें गांधीवाद की दृष्टि करीब-करीब नहीं के बराबर है।" ५१

केवल नेहरू जी ही नहीं, पूरे भारत में अगांधीत्व फैल गया था। गांधी जी के नेतृत्व के जमाने की मान्यताएं तेजी से बदलने लगी। गांधी कालीन जोशी जी तथा उसके अनन्तर काल के जोशी जी में जमीन-आसमान का फर्क पड़ गया। ५२ गांधीवादी भोलानाथ इस परिस्थिति को देख कर व्यंग्य से कहता है -

> " गांधी जी स्वराज्य प्राप्ति के लिए ठीक थे, पर स्वतंत्र भारत के नवनिर्माण के लिए वे 'आउट ऑफ डेट', दकियानूस और पुराने ख्यालों के मालूम पड़ते हैं।" ५३

जब तक गांधी का उपयोग था, उसे हमने सिर पर लेकर नाचा, ज्योंही हमारी क्षुद्र बुद्धि में उसका काम खतम हो गया, उसे सिर से उतार कर अलग धर दिया। ५४

स्वतंत्रता मिलते ही हिन्दुस्तान का नक्शा ही बदल गया। जो जेलखानों में थे, वे सिंहासन पर बैठ गए। जो विदेशी हुकूमत के द्वारा सताये जाते थे, वे खुद सत्ता पर आरूढ हो गए। जो नौकरशाही उन पर जुल्म ढाती थी, वह अब से उन्हीं की आश्रित हो गई, उनसे दबने लगी। पुराने काँग्रेसी कार्यकर्ताओं को ही मंत्रिमंडल में लिया गया था। उनके

मंत्री बनते ही उन्हें आराम और सुख-भोग की सामग्री मिलने लगी। बंगला, पानी, बिजली, फर्नीचर, चपरासी मुफ्त, यानी सरकार की ओर से। रेडिओ, रेफ्रिजरेटर, मोटर आदि सब सामग्री उन्हें मिलने लगी। प्रत्येक मंत्री अपने-अपने विभाग का सार्वभौम शासक होता। मानो हर एक महकमा एक-एक मिनिस्टर की जागीर थी, जो उसे दे दी गई थी।

प्रजातांत्रिक संविधान में चुनाव का महत्वपूर्ण स्थान होता है। शासकीय दल को हर पाँच साल में जनता के सामने अपना समर्थन प्राप्त करने के लिए जाना पड़ता है। चुनाव के दिनों में सारे देश में बड़ी चहल-पहल रहती है। प्रत्याशी एक-दूसरे पर कीचड़ उछालते हैं और जनता से झूठे वायदे करते हैं। परन्तु जीत जाने पर उनमें से कुछ भी वायदे पूरे नहीं करते। जनता को पैसे देकर उनके वोट खरीद लिए जाते हैं अथवा धमकी देकर भी वोट लिए जाते हैं। चुनाव के क्षेत्र में किये जाने वाले इस भ्रष्ट आचरण का सजीव चित्रण 'भग्नमन्दिर' में हुआ हैं । -

> "चुनाव के बादल उमड़ आये थे। चारों तरफ भाइयों हमें वोट दो, देवियों हमें वोट दो के नारे सुनाई पड़ रहे थे। राजनीतिक नभोमण्डल में जैसे तूफान आ गया। पद-लोलुप और उनसे लाभ उठाने वाले व्यक्तियों के सिर पर जैसे भूत सवार हो गया और सारे दिगन्त में वही नारें, वही स्वर सुनाई पड़ने लगे - भाईयों, हमें वोट दो, देवियों हमें वोट दो ।। .... किसी को बात करने की फुर्सत नहीं। हां, आप कह दे कि हमारे पास इतने वोट हैं, तो आप उनके देवता हो गए। लीजिए, यह मोटर, ये हैण्डबिल, यह रूपया, यह हमारा फोटो और यह हमारी पेटी की निशानी।" ५५

प्रजातांत्रिक संविधान में अखबारों का अनन्य साधारण महत्त्व होता हैं। राष्ट्रीय नीति का तथा जनताभिमुख समाचार-पत्र विरोधी दल की भूमिका निभाता है। लेकिन उसे अनेक मुसीबतों का सामना करना पड़ता है। स्वयं जोशी जी भी समाचार पत्र की शक्ति से परिचित हैं। वे चाहते हैं कि प्रदेश का कोई भी अखबार उनके खिलाफ न लिखें। 'जागरण' के संपादक डॉ. छदामीलाल ने तो अपने आप को पूरी तरह से जोशी के चरणों में समर्पित किया हैं, ठीक वैसे ही, जैसे स्वाधीनता-प्राप्ति के पूर्व उन्होंने अपने आपको अंग्रजों के चरणों में

समर्पित किया था। अन्य पत्रों का भी वही हाल है। सरकारी विज्ञापन नहीं मिलेंगे, इस डर से वे जोशी जी के मंत्रिमंडल के खिलाफ कोई आवाज नहीं उठाते हैं। पत्रकारिता का यह कलुषित पक्ष है।

धनंजय का 'युगान्तर' राष्ट्रीय नीति का समाचार पत्र है। जोशी जी को मालूम है कि वह हमेशा अच्छे को अच्छा और बुरे को बुरा ही कहेगा और मंत्रिमंडल के मंत्रियों की करतूतों की ओर अनदेखी नहीं करेगा। इसकारण जोशी जी धनंजय को अपनी प्रभाव-परिधि के भीतर लाना चाहते हैं, जिससे वह उनके मंत्रिमंडल के खिलाफ कुछ भी न लिखे। धनंजय भी उनकी आदर्शों की बातों में उलझ जाता है और कुछ काल तक सुप्त-सा रहता है। लेकिन जैसे ही जोशी जी के मंत्रिमंडल के मंत्रियों के कारनामें दीखने लगते हैं और उसे यकीन हो जाता है कि प्रदेश में चारों तरफ भ्रष्टाचार फैल गया है, वह सब की पोल खोल देता है। यह संघर्ष इतना तीव्र स्वरूप धारण कर लेता है कि अंत में जोशी जी अपने अधिकारों का दुरूपयोग करते हुए गिरधारी, रणदमन सिंह, रमजान खां, पुलिस तथा जगपुरा के राजासाहब द्वारा धनंजय को नष्ट करने का प्रयास करते हैं। अंत में सत्य की जीत होती है और धनंजय पर लगाये गए सारे इल्जाम झूठे साबित होते हैं। धनंजय का 'युगान्तर' पत्रकारिता का उज्ज्वल पक्ष है, जो गांधीवादी आदर्शों पर चलता है।

गांधीवधोत्तर काल में कॉंग्रेस के साथ-साथ अन्य पार्टियां भी राजनीति में सक्रिय होने लगी थी। धनशेट्टिवार समाजवादी पार्टी का सदस्य है। उसके माध्यम से उपन्यासकार ने समाजवादी पार्टी की हलचलों की जानकारी दी है। जब धनंजय और जोशी जी के बीच संघर्ष निर्माण होता है, तब इस झगड़े का उपयोग वह अपनी पार्टी की धौंस जमाने में करता है। वह चाहता है कि जोशी जी का व्यक्तित्व नष्ट-भ्रष्ट हो जाये, ताकि जनता के मन में कॉंग्रेस के प्रति होने वाली सहानुभूति कम हो और उसके दल की साख बढ़े। जाते-जाते उपन्यासकार ने 'प्रजा के नाम पर सत्ता हथियाने वाले' और 'श्रमिकों और मजदूरों के नाम पर सत्ता हथियाने वाले' साम्यवाद की भी चर्चा की है।

गांधीवधोत्तर काल में गांधी जी के प्रति आस्था रखने वाले लोग भी मिल जाते हैं, जो गांधीवाद में असीम निष्ठा रखते हुए उसे समाज में पुनःप्रतिष्ठित करना चाहते हैं। ऐसे लोग संख्या में बहुत कम हैं, फिर भी वे गांधी-दर्शन की शक्ति से सम्पन्न हैं। 'भग्नमन्दिर' में

धनंजय, गीता, भोलानाथ तथा बाबा जी जैसे इने-गिने पात्र ही गांधीवाद के प्रति आस्था व्यक्त करते हुए उसके सिद्धान्तों को अपनाते हुए दिखाई देते हैं। धनंजय सत्य, अहिंसा के मार्ग का अनुसरण कर, साध्य तथा साधन की पवित्रता कायम रखते हुए अन्याय के विरूद्ध अहिंसात्मक आन्दोलन चलाता है। वह अकेला ही गांधी-मार्ग पर दृढ़ रहते हुए स्वार्थी सत्ता से लोहा लेता है। अन्यायी के हृदय-परिवर्तन में उसकी आस्था है। तभी तो गीता को वह शांतिदूत बना कर जोशी जी के घर भेजता है। उसमें सत्याग्रही के सारे गुण मिलते हैं। अनेक मुसीबतों का सामना करते हुए अंत तक वह सत्य के पथ पर अड़िग रहता है। गीता तथा भोलानाथ इसके लिए उसकी सहायता करते हैं।

इस प्रकार 'भग्नमन्दिर' में उपन्यासकार ने गांधीवधोत्तर कालीन राजनीतिक वातावरण का चित्रण विभिन्न आधारों पर किया है। एक ओर वे छद्म गांधीवादी चरित्रों की वास्तविकता पर प्रकाश डालते हैं, तो दूसरी ओर वे ऐसे गांधीवादी चरित्र खड़े करते हैं, जो जनता के दुःख-दर्द को मिटा कर उसे सुख-चैन बांटने के लिए स्वार्थी सत्ता का विरोध करते हैं। भले ही उनकी संख्या कम हैं, फिर भी अंत में वे सफलता प्राप्त करते हैं। सारांशतः हम कह सकते हैं कि गांधीवधोत्तर कालीन राजनीतिक वातावरण का सजीव चित्रण करने में उपन्यासकार सफल हुए हैं।

३.३.२. सामाजिक वातावरण -

'भग्नमन्दिर' की कथावस्तु गांधीवधोत्तर कालीन परिवेश से सम्बद्ध है। अतः इस उपन्यास में उपन्यासकार ने गांधीवधोत्तर कालीन समाज का यथार्थ चित्र प्रस्तुत करने का प्रयास किया है। शेवड़े जी अपने उपन्यासों के पात्रों का चुनाव समाज से ही करते हैं। इस कारण उनके उपन्यासों के पात्र सजीव एवं वास्तविक होते हैं। 'भग्नमन्दिर' की सब से बड़ी खूबी सादगी, यथार्थ की पकड़ और चरित्रों की वास्तविकता है। 'ज्वालामुखी' की तरह 'भग्नमन्दिर' में भी पात्रों का वास्तविक चित्रण करने में उपन्यासकार को सफलता मिली है।

'भग्नमन्दिर' में शेवड़े जी ने नेता, समाज, पुलिस तथा अन्य अफसरों का वास्तविक चित्रण किया है। मुख्यमंत्री तथा मंत्रिमंडल के अन्य मंत्री खुशहाल जिन्दगी बिता रहे हैं। मुख्यमंत्री का वैभव तो किसी राजा-महाराजा से कम नहीं है। अन्य मंत्रियों की लगभग यही अवस्था है। 'यथा राजा तथा प्रजा' के अनुसार जनता भी उसी प्रकार के ऐशोआराम के

ख्वाब देखती है। वह भी अब गांधी जी की सादगी को भूल कर भड़कीलेपन की ओर आकर्षित होने लगी हैं। धनंजय इसे पश्चिमी जीवन-दृष्टि का परिणाम मानते हुए कहता है-

> " प्रत्येक आदमी निन्यानवे के फेर में पड़ गया है। खाना, कपड़ा, मकान, रेडियो, फर्नीचर - सब कुछ अच्छा चाहिए। वह यदि हमारी तनख्वाह में से पूरा नहीं होता है, तो दूसरे तरीके से पूरा करना चाहिए, फिर वह गैरकानूनी तरीका क्यों न हो। अधिकारों पर हरेक जोर देता है कि मुझे यह चाहिए, वह चाहिए, पर कर्तव्य की तरफ किसी का ध्यान नहीं है। कम-से-कम परिश्रम में अधिक से अधिक सुख-भोग मिलना चाहिए, इसी ध्येय के पीछे हम पागल हैं। तनख्वाहें बढ़नी चाहिए, महंगाई भत्ता बढ़ना चाहिए, वेतन बढ़ने चाहिए, काम के घण्टे कम होने चाहिए, सुविधाएं बढ़नी चाहिए, यहीं नारे उठते हैं। फिर काम कौन करेगा, देश की सम्पत्ति कैसे बढ़ेगी, राष्ट्र ऊँचा कैसे उठेगा, इसकी तरफ ध्यान नहीं है।" ५६

इस प्रकार समाज में कर्तव्यविमुखता की मात्रा बढ़ गई है।

स्वतंत्रता-पूर्व काल में, भारतीय समाज में महात्मा गांधी जी के प्रति गहन आस्था दिखाई देती थी। लेकिन भारत को स्वाधीनता प्राप्त होते ही तथा गांधी जी की मृत्यु होते ही लोग तुरन्त गांधी जी एवं उनके सिद्धान्तों को भूल गए। मानो केवल स्वतंत्रता-प्राप्ति तक ही हमें गांधी जी की जरूरत थी, स्वतंत्र भारत के नवनिर्माण के लिए वे 'आऊट ऑफ डेट' हो गये हैं। धीरे-धीरे पूरे भारत में अगांधीत्व फैल गया। केवल धनंजय, गीता तथा भोलानाथ जैसे इने-गिने लोग ही गांधी जी एवं उनके विचारों से चिपके रहे हैं। गांधी जी के नेतृत्व के जमाने की मान्यताएँ तेजी से बदलने लगी। गांधी कालीन जोशी जी तथा उसके अनन्तर काल के जोशी जी में जमीन-आसमान का फर्क पड़ गया। ५७

सुसंस्कृत भारतीय समाज में एक ऐसा वर्ग रहता है, जो समाज की उन्नति के बारे में सोचता रहता है। उसे हम गांधीवादी समाज कह सकते हैं, जो अपने उदर-पोषण की चिन्ताओं से मुक्त रह कर हमेशा समाज के कल्याण और मांगल्य की बात ही सोचा करता है और समाज के ज्ञान, चिन्तन और आचरण को विशिष्ट दिशा देना उसका काम था।

समाज में दुर्व्यवस्था न हो, अनाचार न फैले और उस पर अत्याचार न हो यह देखना भी इसी वर्ग का काम था। उसका रहन-सहन अत्यन्त सरल था, सादा जीवन और उँचे चिन्तन का प्रतीक था। उसकी जीवन की आवश्यकताएँ सीमित थी, जो समाज की ओर से अनायास ही पूरी हो जाती थी। धनंजय, गीता तथा भोलानाथ समाज के इसी वर्ग के प्रतिनिधि हैं। लेकिन खेद की बात यह कि समाज के इस वर्ग की अवस्था बहुत ही शोचनीय है। उपन्यासकार लिखते हैं -

> " जीवन-मान और महंगाई इतनी बढ़ गई है कि जो लोग स्वाभिमान से स्वतंत्र चिन्तन और समाज सेवा का व्रत लेना चाहते हैं, उनकी जिन्दगी कठिण हो गई हैं। इसलिए निर्भीक, स्वतंत्र और तेजस्वी व्यक्तियों के चिन्तन तथा विचार प्रदर्शन के लिए बहुत ही प्रतिकूल वातावरण है।" ५८

शेवड़े जी महात्मा गांधी जी के अनुयायी थे। इस कारण उनके उपन्यासों में पाश्चात्य संस्कृति के विपरीत परिणाम दिखाई देना कोई अनुचित बात नहीं है। पाश्चात्य संस्कृति का अंधानुकरण करने की प्रवृत्ति भारतीय वातावरण पर गहरा परिणाम कर गई। परिणामस्वरूप भारतीय नर-नारियां तथा युवक-विद्यार्थी 'हमारा जूता है जापानी, सिर पर लाल टोपी रूसी, फिर भी हम हैं हिन्दुस्तानी' बन गये हैं। शेवड़े जी ने बहुतांश उपन्यासों में पाश्चात्य वातावरण की ओर तिरस्कार की दृष्टि से देखा है। ५९'भग्नमन्दिर' के डिप्टी सेक्रेटरी रघुनाथ सहाय के परिवार पर यह पाश्चात्य-प्रभाव दिखाई देता है। उनकी पत्नी तारामतीदेवी के बारे में उपन्यासकार लिखते हैं -

> "उनका जन्म केवल हिन्दुस्तान में हुआ था, पर लिबास, रहन-सहन, तहजीब से क्या मजाल कि वे अंग्रेजों को न लजा दे।" ६०

पाश्चात्य दृष्टिकोण के कारण ही हमारा समाज-जीवन और राष्ट्र-जीवन असंतुलित हो गया हैं, जिसमें धर्म, कला, साहित्य, सत्य, सौन्दर्य आदि सांस्कृतिक मूल्यों के लिए अत्यंत गौण स्थान दिया गया है। ६१ सचमुच, पाश्चात्य-प्रभाव के कारण स्वातंत्र्योत्तर भारतीय समाज ने अत्यंत विकृत स्वरूप धारण कर लिया है। उपन्यासकार लिखते हैं -

> "हमारे भारत का यह वातावरण भदरंगी है - इसमें सब तरह

के रंग हैं, पर रंग-संगति नहीं है। हमने कुछ इंग्लंड का देखा, तो उनका अनुकरण कर लिया, कुछ अमेरिका में देखा, तो उसे ले लिया, रूस में देखा, तो उसे भी रख लिया, चीन गये, तो वहां से भी कुछ विचार उठा लाएं; और लोग सर्वोदय-सर्वोदय चिल्लाते हैं, तो उसे भी रख लिया। यानी कहीं की ईंट, कहीं का रोड़ा, भानमती ने कुनबा जोड़ा। न इसमें कोई सूत्रबद्धता है, न एक निश्चित योजना। इसमें और सब हो, पर भारतीयता की छाप करीब-करीब नहीं है। " ६२

खेद की बात यह कि आजाद होने पर भी भारतीय लोगों में से गुलामी की वृत्ति नहीं गई है।

स्वतंत्रता-प्राप्ति के उपरान्त भारत के प्रत्येक प्रदेश में भ्रष्टाचार और अनाचार बहुत फैल गया है। मुख्यमंत्री के साथ-साथ अन्य मंत्री, पुलिस तथा अधिकारी लोग जनता के हित की अपेक्षा स्वंय के हित को देखने लगे हैं। बेचारी जनता पहले भी असहाय और बेजबान थी, अब भी है। 'भग्नमन्दिर' में इसे सुन्दर ढंग से दिखाया है -

"सत्ताधारी लोगों में तथा डण्डा चलाने वाले गुण्डों में ऐसी साँठ-गाँठ होती कि स्वराज्य और नवनिर्माण के नाम पर जो भी टपकता, वह ये लोग बीच में ही झेल कर आपस में बाँट खाते। सर्वसाधारण जनता तक उसके पहुंचने की गुंजाइश ही नहीं थी। वह जनता पहले भी बेजबान थी, अब भी बेजबान है। उसके दुःख-दर्द को सुनने-समझनेवाला कोई नहीं, उस पर क्या बीत रही है, इसकी कानोंकान खबर नहीं।" ६३

शराब बन्दी का कानून होते हुए भी सोहनसिंह जैसे लोग चोरी-छिपे शराब पीते हैं। मनमोहन बाबू जैसे मंत्री तो बड़ी-बड़ी पार्टियों में शामिल होते हैं,जहां शराब की नदियां बहती हैं।

भारत की प्रकृति मूलतः आध्यात्मिक तथा धार्मिक होने के कारण भारतीय समाज में साधु-संतों के प्रति आदर की दृष्टि से देखा जाता है। इतना ही नहीं, घर में जब कोई बीमार पड़ जाता है, तब किसी साधु को बुलाया जाता है और पूजा-पाठ किया जाता है।

'भग्नमन्दिर' में बाबा जी के पूजा-पाठ तथा मंत्रोच्चारण के बल पर एक बालिका को जीवदान दिये जाने का वर्णन किया गया है। भारतीय समाज पर प्राचीन काल से ही 'गीता' का प्रभाव अत्यधिक मात्रा में पाया जाता है। 'भग्नमन्दिर' के धनंजय, गीता तथा भोलानाथ पर यह प्रभाव प्रकर्ष से दिखाई देता है।

इस प्रकार 'भग्नमन्दिर' में गांधीवधोत्तर कालीन सामाजिक वातावरण का सजीव चित्रण हुआ है।

३.३.३. आर्थिक वातावरण -

'भग्नमन्दिर' उपन्यास में गांधीवधोत्तर कालीन आर्थिक वातावरण पर भी प्रकाश डाला है। इस काल में पूँजीवाद के फलस्वरूप शोषित और शोषक - दो वर्ग बने, जिससे अर्थ का असमान विभाजन होने लगा। जिन व्यापारियों ने अंग्रेजों के जमाने में अनीति से धन कमाया था, वहीं लोग देश स्वतंत्र होने पर उसका गुणगान करने के लिए तथा नयी परिस्थिति का फायदा उठाने के लिए फिर से आगे बढ़े। धनशेट्टिवार जैसे लोग, जिन्होंने जिन्दगी भर अंग्रेजी सरकार की नौकरी की और स्वराज्य मिलते ही रोजगार-धंदे में घुस गये और टकसाल बनाने लगे। ६४एक ओर व्यापारी कालाबाजार करके धन कमा रहे थे और रिश्वत देकर टैक्स में बचत कर रहे थे, तो कोई धन के आधार पर मंत्री को खरीद कर अपना उल्लू सीधा कर रहे थे। हातिमभाई जैसे ठेकेदार मंत्रियों को पार्टी में बुलाते हैं और अपना टेण्डर पास करवा लेते हैं। इसी प्रकार अनेक सरकारी अफसर मंत्रियों को रिश्वत देकर अपनी तरक्की-तबातला करवा लेते हैं। जोशी जी के प्रशासन में चारों ओर भ्रष्टाचार फैल चुका है। उपन्यासकार लिखते हैं -

> "मंत्रियों के रिश्तेदारों के यहां तो मोतियों की वर्षा हो रही है। ठेकें, खदानें, एजन्सियां - कोई ऐसा धंदा नहीं, जिसमें उनके रिश्तेदारों का साझा न हो। ..... चलते-पुर्जे अफसर उन्हीं की खुशामद करके तथा उन्हें अपनी दलाली देकर अपनी तरक्कियां करा लेते हैं।" ६५

मंत्रियों के ऐशोआराम का तो क्या पूछना ? उनका वैभव किसी राजा-महाराजा से कम नहीं है। ये स्वतंत्र भारत के मंत्री राजपुरूषों की शान-शौकत से रहने लगे। बड़े-बड़े बंगले, कालीन, फर्नीचर, जगमग-जगमग करती मोटरें, शानदार प्रीतिभोज और पार्टियाँ, सब

कुछ शाही ढंग से होने लगा था। प्रत्येक मंत्री के पास शानदार बंगला, मोटर, नौकर तथा अन्य सुविधायें होना एक आम बात थी। मुख्यमंत्री के साथ-साथ उनके परिवार के लोगों के पास भी कई मोटरें थी। इस सम्बन्ध में उपन्यासकार लिखते है -

> " जोशी जी के अहाते थे मे तीन सरकारी मोटरें खड़ी रहती, तो पाँच निजी मोटरें भी रहती, जो उनके परिवार के लोगों ने अपनी-अपनी कमाई और पुरूषार्थ से खरीदी थी।" ६६

सर्वसाधारण जनता की परिस्थिति ठीक इसके विपरीत थी। बेचारी जनता पहले भी बेजबान, असहाय थी, अब भी है। 'भग्नमन्दिर' में उपन्यासकार ने इसे सुन्दर ढंग से दिखाया है। -

> " सत्ताधारी लोगों में तथा ड़ंडा चलाने वाले गुण्ड़ों में ऐसी सांठ-गांठ होती कि स्वराज्य और नवनिर्माण के नाम पर जो भी टपकता , वह ये लोग बीच में ही झेल कर आपस में बाँट खाते। सर्वसाधारण जनता तक उसके पहुँचने की गुंजाइश ही नहीं थी। वह जनता पहले भी बेजबान थी, अब भी बेजबान है। उसके दुःख-दर्द को सुनने-समझे वाला कोई नहीं, उस पर क्या बीत रही है, इसकी कानोंकान खबर नहीं।" ६७

समाज-सेवा का व्रत लेकर चलने वालो के लिए तो यह वातावरण एकदम प्रतिकूल था। -

> " जीवन-मान और महंगाई इतनी बढ़ गई हैं कि जो लोग स्वाभिमान से स्वतंत्र चिन्तन और समाज सेवा का व्रत लेना चाहते है, उनकी जिन्दगी कठिण हो गई हैं। इसलिए निर्भीक, स्वतंत्र और तेजस्वी व्यक्तियों के चिन्तन तथा विचार प्रदर्शन के लिये बहुत ही प्रतिकूल वातावरण हैं।" ६८

इसप्रकार 'भग्नमन्दिर' में गांधीवधोत्तर कालीन भारत की असमान आर्थिक स्थिति का जीवन्त चित्रण हुआ है।

३.३.४. धार्मिक वातावरण -

'भग्नमन्दिर' में गांधीवधोत्तर कालीन धार्मिक वातावरण का भी चित्रण हुआ है। इतना ही नहीं, तो उपन्यासकार की मूल प्रवृत्ति धार्मिक होने तथा स्वातंत्र्योत्तर भारत में धर्म की

प्रतिष्ठा करना उनका दूसरा महत्त्वपूर्ण उद्देश्य होने के कारण प्रस्तुत उपन्यास में गांधीवधोत्तर कालीन धार्मिक वातावरण की विस्तृत चर्चा हुई है।

जैसा कि इसके पहले कहा जा चुका है, शेवड़े जी पर मध्यकालीन सांस्कृतिक तथा धार्मिक विचारों का प्रभाव पड़ा है। वे प्रकृति से धार्मिक हैं और विचारों से सुधारवादी। धार्मिक दकोसले तथा पाखंड में उनकी कोई सहानुभूति नहीं है। शेवड़े जी पर गांधी जी का जबर्दस्त प्रभाव था। शेवड़े जी के धार्मिक विचारों पर भी गांधी जी की स्पष्ट छाप है। 'भग्नमन्दिर' में एक स्थान पर लिखा है –

> "गांधी जी को सन्तों और भक्तों की संगति में आनन्द आता था और उन्हें वे कई दिनों तक बिना किसी दिखावे या चर्चा-चौकशी के अपने आश्रम में रख लेते थे। अन्य आश्रमवासी शायद उन्हें पहचान भी नहीं पाते हो, पर गांधी जी को असली साधु-संतों की पहचान थी और वे उनकी कद्र करते थे, उनकी संगत में बड़ा आनंद लेते थे।"६९

'संगम' कहानी-संग्रह के ' परिचय विभाग' में यमुना जी ने लिखा है कि पत्रकार और साहित्यिक मित्रों की तरह साधु-संन्यासी और स्वामी आदि भी उनके घर पर आते रहते थे। अतः स्वयं शेवड़े जी गांधी जी के समान आचरण करने का प्रयास करते थे और अपने आदर्श पात्रों के द्वारा भी उसी प्रकार का आचरण करवा लेते थे। 'भग्नमन्दिर' का नायक धनंजय ऐसा ही एक पात्र है, जिस पर शेवड़े जी के व्यक्तित्व की स्पष्ट छाप है। उसे भी असली साधु-संतों की पहचान थी। संत देवाजी महाराज से जब उसका परिचय होता है, तब उसे संत तुकाराम, रामकृष्ण परमहंस और गांधी जी इन तीन महात्माओं का स्मरण होता है। बाबाजी में उसे संत तुकाराम की भक्तिभावना, स्वामी रामकृष्ण का आत्मज्ञान और गांधी जी का कर्मयोग और तीनों की लीनता और नम्रता का साक्षात्कार होता है। ७० वह अन्य साधुओं में इतनी विनम्रता और सौजन्य नहीं पाता है।

शेवड़े जी मानते हैं कि साधु-संतों में कई खोटे तथा पाखंडी होते हैं। पर उसके कारण सारा संतत्व, साधुत्व, अध्यात्म या ईश्वरवाद त्याज्य तथा तिरस्करणीय नहीं है। नकली साधु-संन्यासी, धूर्त पाण्डे-पुजारी तथा धर्म के नाम पर व्यभिचार फैलाने वाले ढोंगी राजनीतिक नेता शेवड़े जी के आक्रोश के पात्र बने हैं। इसी कारण ही उन्होंने मुख्यमंत्री जोशी जी को

काशी के ब्राह्मणों से आशीर्वाद लेते दिखा कर व्यंग्य किया है। काशी के ये ब्राह्मण जोशी जी की झूठी प्रशंसा करते हैं और अंत में शतमुद्रा की दक्षिणा माँग लेते हैं। ७१ इसी प्रकार समरेन्द्र गुप्ता नामक एक भ्रष्ट बंगाली वकील अपने कुकर्मों पर परदा डालने के लिए विजयादशमी की नवरात्र में मनोभाव से काली माता की पूजा करता दिखाई देता है। ७२ श्रीमती तारामतीदेवी सहाय जैसे कई नास्तिक लोग भी यहां हैं, जो खुद को ' मॉडर्न ' कहलाने के लिए ईश्वर, धर्म आदि में विश्वास नहीं करते। ७३ धर्म का यह कुलुषित पक्ष है।

भारत की आध्यात्मिक और सांस्कृतिक विचारधारा को लेकर चलने वाले पात्रों में संत देवाजी महाराज, धनंजय और भोलानाथ प्रमुख हैं। बाबाजी एक विनम्र साधु हैं, इतने विनम्र कि अपने भक्तों को वे 'भगवान' कहते हैं और उन्हें झुक कर प्रणाम करते हैं। वे मानते हैं कि हमेशा धर्म की जीत और अधर्म की हार होती है। गांधी जी की सादगी का उन पर जबर्दस्त प्रभाव है।

धनंजय तो धर्म का प्रतीक ही है। उसमें गांधी जी के धार्मिक विचार ठूंस-ठूंस कर भरे हैं। धनंजय और गीता भारत स्वतंत्र होने के पहले दिन ही देवगृह में जाकर कर्पूर-दीप और अगरबत्ती लगा कर भारत के उज्ज्वल भविष्य के लिए प्रार्थना करते दिखाई देते हैं। ७४ धनंजय ईश्वर की कृपा को ही सबसे श्रेष्ठ सहारा मानता है। उसका विश्वास है कि भगवान उसकी सहायता किये बगैर नहीं रहेंगे।

भोलानाथ के मन में भी बचपन से ही ईश्वर तथा साधु-संतों के प्रति आस्था है। जब उसका मित्र धनंजय जोशी जी द्वारा रचाये गये चक्रव्यूह में फँस जाता है, तब कानूनी कामकाज के अलावा वह हवन और जाप का एक सत्र शुरू करता है और उसके विजय की कामना करता है। ७५ वह बाबा जी का परम भक्त है। बाबा जी में भगवान कृष्ण का अंश है, ऐसा उसका विश्वास था। रायसाहब रणदमन सिंह की पत्नी जैसी सत्यनारायण की पूजा करने वाली अनेक नारियां भी भारत में मौजूद हैं। धर्म का यह उज्ज्वल पक्ष है।

'भग्नमन्दिर' में शेवड़े जी ने धनंजय के माध्यम से अपने धार्मिक विचारों को अभिव्यक्ति दी है। शेवड़े जी के अनुसार धर्म एक व्यापक प्रेरणा है, जो जीवन को श्रद्धा और शक्ति प्रदान करती है, जो जीवन को दिशा और आदर्श देती है। वह एक ऐसी चेतना देती है, जिसके नाम पर मर मिटने के लिए भी आदमी तैयार हो जाता है। उसके कारण मानव को

अपने भीतर बसने वाले दानव का दलन कर देवत्व की ओर जाने की प्रेरणा मिलती है। धर्म का प्रवर्तन करने वाले लोग व्यक्तिनिष्ठ नहीं होते, तो समाजनिष्ठ होते हैं। 'भग्नमन्दिर' का नायक धनंजय भी इन्हीं व्यक्तियों की परम्परा का व्यक्ति है। उसके निम्न विचार दृष्टव्य हैं -

> "शारीरिक भूख शमन होने के बाद आत्मा की भूख मनुष्य को सताने लगती है। आत्मिक क्षुधा की अतृप्ति ही हमारे समस्त नैतिक पतन का कारण है। आत्मा की यह क्षुधा ईश्वर से साक्षात्कार करने के लिए तड़पती है। मानव की आत्मा विश्व की ब्रह्मात्मा में विलीन होने के लिए छटपटाती है और इस क्षुधा की पूर्ति या तृप्ति का मार्ग धर्म है।" ७६

धनंजय की निश्चित धारणा है कि आज के भारत की सारी बुराइयां और मुसीबतें धर्म-पथ से भ्रष्ट होने के कारण ही पैदा हुई हैं। वह धर्म को समाज को धारण करने वाला नीति-तत्त्व मानता है और कहता है कि देश की संस्कृति और जीवन-प्रणाली हमेशा उसी पर आधारित रहती हैं।

गांधी जी की धार्मिक विचारधारा से धनंजय काफी प्रभावित है। उसका कहना है कि गांधी जी धर्म-रहित राजनीति से कोसों दूर थे। अगर हम गांधी-प्रतिपादित धर्म-मिश्रित राजनीति को आधारशिला मान कर आगे बढ़ते, तो इतने गुमराह नहीं होते। ७७ धनंजय राज्यसत्ता पर धर्मसत्ता का अंकुश होना आवश्यक मानता है। क्षात्र-तत्त्व और ब्रह्म-तत्त्व के समन्वय से ही समाज सुसंस्कृत और समुन्नत हो सकता है, ऐसी उसकी धारणा थी। उसी प्रकार वह अध्यात्म और विज्ञान के समन्वय की भी आवश्यकता महसूस करता है। धनंजय का स्पष्ट मत था कि जिस प्रकार सफल कर्म करने के लिए दोनों हाथों की आवश्यकता होती है, उसी प्रकार जीवन की पूर्णता के लिए आध्यात्मिक ज्ञान और विज्ञान - दोनों की आवश्यकता होती है। ७८

धनंजय के मन में भारतीय संस्कृति के प्रति असीम श्रद्धा है। वह जानता है कि भारत की प्रकृति अध्यात्म की है, उसको बिसरा कर हम भारतीय स्वतंत्रता का मन्दिर नहीं बना सकते। भारत का नवनिर्माण दूसरे देशों की अंधी नकल करके नहीं कर सकते।

भारतीय संस्कृति की परम्परा अत्यंत प्राचीन और उज्ज्वल है। वह गंगा की धारा की तरह पवित्र है और उसमें वैदिक ऋषियों का चिन्तन, कवियों के स्वप्न, कर्मयोगियों के परिश्रम, समाज-सुधारकों और उद्धारकों की सेवा-भावना तथा साधु-संतों का भक्तिभाव मिला हुआ है। ७९ धनंजय गांधी जी की विश्वबन्धुत्व की भावना से भली-भाँति प्रभावित है। वह पश्चिमी भौतिकवाद के अर्थतत्व से प्रजातंत्र की मुक्ति करके उसमें अध्यात्म तत्त्व भरने की आवश्यकता महसूस करते हुए कहता है -

> "ऐसा करने से केवल एक देश के ही नहीं, समस्त विश्व के नागरिक, केवल बन्धु ही नहीं, एकात्म जीव है, यह भावना दृढ होगी। यह विश्वात्मकता ही विश्व में शान्ति का राज्य, धर्म का राज्य या रामराज्य की स्थापना करने में सफल होगी। भारतीय संस्कृति की यही विश्व को एक नम्र देन है।" ८०

भारतीय संस्कृति के प्रति धनंजय के मन में जितनी आस्था है, पाश्चात्य संस्कृति के प्रति उतनी ही अनास्था। पाश्चात्य संस्कृति के प्रभाव के कारण ही हमारी संस्कृति में अव्यवस्था फैल गई है, ऐसा वह मानता था। सारांशतः हम कह सकते हैं कि धनंजय के धार्मिक विचारों पर शेवड़े जी के व्यक्तित्व तथा गांधी जी के विचारों का जबर्दस्त प्रभाव पड़ा है।

इस प्रकार 'भग्नमन्दिर' उपन्यास में गांधीवधोत्तर कालीन धार्मिक वातावरण की विस्तृत अभिव्यक्ति हुई है।

'भग्नमन्दिर' एक राजनीतिक उपन्यास होने के कारण तथा स्वतंत्रता-प्राप्ति एवं गांधी जी के निधन के पश्चात् भारतीय राजनीति में आये परिवर्तन की चर्चा करना उपन्यासकार का मुख्य उद्देश्य होने के कारण इसमें राजनीतिक वातावरण को प्रमुखता मिली है। उसकी तुलना में सामाजिक तथा आर्थिक वातावरण का चित्रण कम मात्रा में हुआ है। उपन्यासकार की मूल प्रवृत्ति धार्मिक होने के कारण तथा स्वातंत्र्योत्तर भारत में धर्म की प्रतिष्ठा करना लेखक का अन्य उद्देश्य होने कारण इसमें धार्मिक वातावरण का अधिक चित्रण हुआ है। निष्कर्ष रूप में हम कह सकते हैं कि 'भग्नमन्दिर' में उपन्यासकार ने गांधीवधोत्तर कालीन राजनीतिक, धार्मिक, सामाजिक तथा आर्थिक - चारों प्रकार के वातावरण को कम-अधिक मात्रा में चित्रित किया है।

●उद्धरण सूची -

१. 'ज्वालामुखी', अनन्त गोपाल शेवड़े, पृ.३४

२. वही, पृ.८१

३. वही, पृ.८२

४. वही, पृ.१२-१३

५. वही, पृ.१३-१४

६. वही, पृ.१४

७. वही, पृ.१६

८. वही, पृ.२१

९. वही, पृ.२२

१०. वही, पृ.३१-३२

११. वही, पृ.३३

१२. वही, पृ.३३-३४

१३. वही, पृ.४१

१४. वही, पृ.७२

१५. वही, पृ.८६

१६. वही, पृ.१००

१७. वही, पृ.१३०

१८. वही, पृ.३०

१९. वही, पृ.१५८

२०. वही, पृ.१३

२१. वही, पृ.१३

२२. 'अनन्त गोपाल शेवड़े और उनका साहित्य', डॉ. शं.ना.गुंजीकर, पृ.२०८

२३. वही, पृ.२१०

२४. 'ज्वालामुखी', अनन्त गोपाल शेवड़े, 'प्रकाशकीय' से उद्धृत

२५. वही, 'प्रकाशकीय' से उद्धृत

२६. वही, 'दो शब्द' से उद्धृत

२७. 'अनन्त गोपाल शेवड़े और उनका साहित्य', डॉ. शं.ना.गुंजीकर, पृ.१९१

२८. वही, पृ.८२

२९. 'ज्वालामुखी', अनन्त गोपाल शेवड़े, पृ.११३

३०. वही, पृ.१७०

३१. वही, पृ.७६

३२. वही, पृ.७२

३३. वही, पृ.११०

३४. वही, पृ.१७

३५. वही, पृ.९८

३६. वही, पृ.१८४

३७. वही, पृ.७२

३८. वही, पृ.११०

३९. वही, पृ.१६७

४०. 'भग्नमन्दिर', अनन्त गोपाल शेवडे, पृ.९६

४१. वही, पृ.१३१-१३३

४२. वही, पृ.८९

४३. वही, पृ.२६६

४४. वही, पृ.१०३

४५. वही, पृ.१४९

४६. वही, पृ.७

४७. वही, पृ.११

४८. वही, पृ.१८-१९

४९. वही, पृ.१९-२०

५०. वही, पृ.४६

५१. वही, पृ.२७६

५२. वही, पृ.१६९

५३. वही, पृ.२७४

५४. वही, पृ.२८१

५५. वही, पृ.३०१-३०२

५६. वही, पृ.२८४-२८५

५७. वही, पृ.१६९

५८. वही, पृ.२८४

५९. 'अनन्त गोपाल शेवड़े और उनका साहित्य', डॉ. शं.ना.गुंजीकर, पृ.१७९-१८०

६०. 'भग्नमन्दिर', अनन्त गोपाल शेवड़े, पृ.१८

६१. वही, पृ.२८४

६२. वही, पृ.२८२

६३. वही, पृ.१३३

६४. वही, पृ.२०२

६५. वही, पृ.८९

६६. वही, पृ.९६

६७. वही, पृ.१३३

६८. वही, पृ.२८४

६९. वही, पृ.२४५-२४६

७०. वही, पृ.२६०

७१. वही, पृ.८४-८५

७२. वही, पृ.१५१

७३. वही, पृ.४५

७४. वही, पृ.८

७५. वही, पृ.२६८

७६. वही, पृ.२७९

७७. वही, पृ.२८२
७८. वही, पृ.२८३

७९. वही, पृ.२८५-२८६

८०. वही, प.२८९